# सत्यनारायण व्रत-प्रेरण

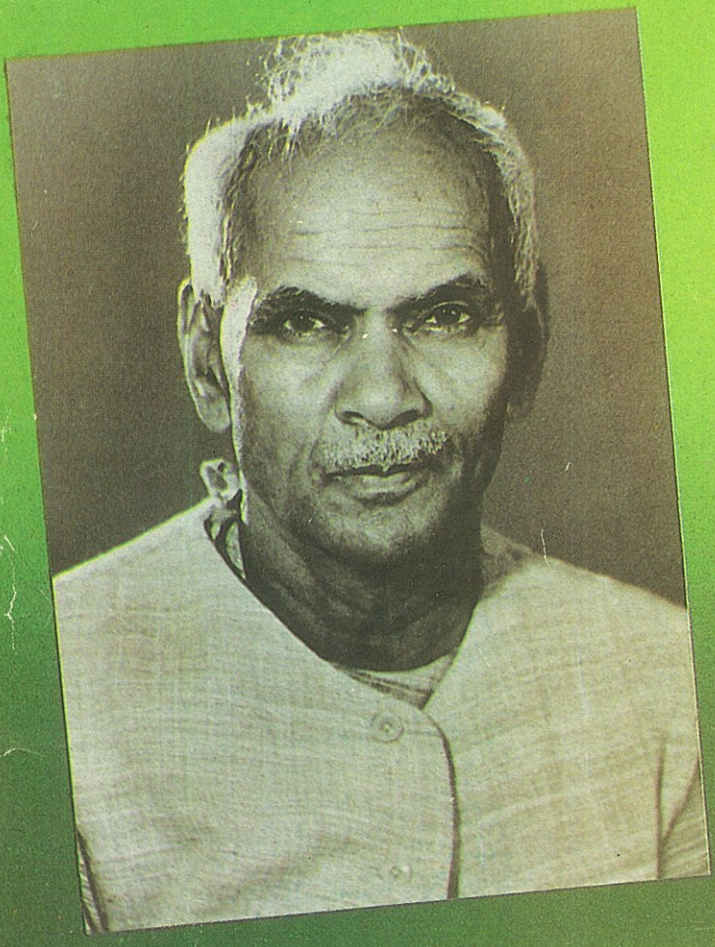

- पं०श्रीराम शर्मा आचार्य

# सत्यनारायण व्रत-प्रेरणा

प्रकाशक मुद्रक :
युगान्तर चेतना प्रेस,
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

मुम्बई में पुस्तकों की अधिक जानकारी हेतु
625 02 80 / 624 57 07 / 624 79 80
IN MUMBAI FOR MORE
INFORMATION ABOUT BOOKS

१९९८

मूल्य- ५ रुपये

# प्राक्कथन

सत्यनारायण व्रत कथा लोकप्रिय तो बहुत है, किन्तु वर्तमान प्रचलित ऽम में उसका उपयोगी रूप लुप्तप्राय हो गया है। ऋषियों ने सत्यनारायण व्रत ा प्रचार इस उद्देश्य से किया था कि लोग भगवान् को मनुष्य-रूप में नहीं: ाव-रूप, सिद्धान्त-रूप एवं शक्ति-रूप में समझें। सत्य ही नारायण है, यह ाव सत्यनारायण कथा से उभरता है। सत्य रूप में भगवान् को मानकर सकी आराधना ही सत्य-व्रत है।

सत्यनारायण व्रत कथा से सभी वर्गों को मार्गदर्शन दिया जा सकता है। ामाज में चार शक्तियाँ प्रधान रूप से सक्रिय रहती हैं- १. ज्ञान २. बल ३. धन ्वं ४. श्रम। इन सभी शक्तियों का विकास और सदुपयोग समाज की सुव्यवस्था ़ लिए आवश्यक है। इन्हीं शक्तियों से सम्पन्न व्यक्तियों को क्रमशः . ब्राह्मण २.क्षत्रिय ३. वैश्य एवं ४. शूद्र कहा जाता था। इन शक्तियों को ात्य-परायण बनाकर कैसे सुख-समृद्धि पायी जाय, यह मार्गदर्शन सत्य-व्रत **ऽथा से मिलता है।**

**इस दृष्टि से सत्यनारायण व्रत कथा बहुत** लोकोपयोगी है। लोकप्रिय ऽथा को **लोकोपयोगी ढंग से प्रस्तुत किया जा सके, तो समाज का उल्लेखनीय** ाभ हो सकता है। लोग सत्य-व्रत का सही रूप सत्यनारायण कथा के ाध्यम से समझ लें, तो सच्चे अर्थों में आस्तिक बनें तथा सुख-समृद्धि के अधिकारी बन जायें। इसके लिए कथा वाचकों को अपने गंभीर उत्तरदायित्व को समझना और पालन करना होगा। युग निर्माण परिवार के कर्मठ परिजन कथाओं द्वारा लोक शिक्षण के अपने अभियान के अन्तर्गत इस उद्देश्य की ूर्ति कर भी रहे हैं और जहाँ ये प्रयोग हो रहे हैं, वहाँ आशातीत सफलतायें भी मेल रही हैं।

इस उद्देश्य से युग निर्माण योजना द्वारा बहुत पहले ही सत्यनारायण व्रत कथा परिष्कृत रूप में प्रकाशित की जा चुकी है, उसी का उपयोग परिजन करते हैं। उसके अनुसार एक दिवसीय अथवा पाँच दिवसीय कथा आयोजनों के सफल प्रयोग किये गये हैं।

पर्याप्त मात्रा में देश भर में हुए भी हैं, किन्तु उसमें कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी आयीं, जिनका समयानुकूल हल निकाला जाना आवश्यक समझा गया। एक बड़ी कठिनाई लोगों के पास समय की कमी है। पुण्य की दृष्टि से कथा कहने-सुनने वाले तो जल्दी-जल्दी फर्राटा मारकर किसी प्रकार कथा पूरी करके सन्तोष कर लेते हैं; किन्तु जहाँ लोकशिक्षण और लोगों को सही दिशा प्रदान करना मुख्य उद्देश्य हो, वहाँ ऐसा सम्भव नहीं। पूरी कथा व्याख्या सहित कहने में समय बहुत लग जाता है। पाँच दिवसीय कथा आयोजनों में अथवा किन्हीं विशेष प्रसंगों में तो उतना समय निकाल भी लिया जाता है, परन्तु घरेलू स्तर पर कथा-आयोजन करने में समय की मर्यादा आवश्यक हो जाती है।इसका मतलब यह है कि कथा के कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों पर जोर देते हुए सामान्य घटनाक्रम को तेजी से पूरा कर दिया जाए, किन्तु इतना कर पाना हर कार्यकर्ता के लिये सम्भव नहीं हो पाता।

अस्तु, यह पुस्तक विशेष रूप से इन्हीं समस्याओं के हल के रूप में प्रकाशित की गयी है। कुछ चुने हुए श्लोकों को ही इसमें लिया गया है। नीचे के कथा प्रसंगों की शृंखला सरल भाषा में मिला दी गई है। महत्त्वपूर्ण व्याख्या के स्थलों पर रोचक - प्रेरक कथा प्रसंग भी संक्षेप में दे दिये गये हैं। इन कथा प्रसंगों में से आवश्यकता के अनुसार एक या अधिक प्रसंग उस संदर्भ में सुनाये जा सकते हैं। समय के अनुसार उन्हें संक्षिप्त करना अथवा विस्तार देना कठिन कार्य नहीं है। इतना अभ्यास तो कथा वाचक को कर ही लेना चाहिये। आवश्यकतानुसार कथावाचकों के लिए संकेत () के अन्दर दे दिए गये हैं। * चिह्न लगाकर कथा प्रवाह को सुगम भाषा में आगे बढ़ाया गया है। इन संकेतों को ध्यान में रखकर कथा करने में सुगमता रहेगी। उदाहरण, दृष्टांत स्थान-स्थान पर दिए हैं। कथावाचक अपनी विशेषता से उन्हें सरसता प्रदान करते रह सकते हैं। इसी प्रकार के अन्य उपयुक्त उदाहरणों का उपयोग भी किया जा सकता है।

इस पुस्तक का उपयोग विशेष रूप से पारिवारिक आयोजनों में अधिक

सुविधाजनक रहेगा। कार्यकर्ता पुरुष अथवा महिलाओं को भी इसके आधार पर रोचक तथा प्रभावशाली कथा कहने में कठिनाई नहीं होगी। कथा यदि बड़ी पुस्तक से ही करनी हो, तो भी तैयारी के लिये यह पुस्तक बहुत सहायक सिद्ध होगी। इतने श्लोंको को बार-बार पाठ करके स्पष्टता से बोलने का अभ्यास कर लिया जाय। इस पुस्तक के आधार पर बड़ी पुस्तक में चिह्न लगाकर चला जा सकता है। जहाँ कथा प्रसंग जोड़ा है, उन स्थलों को समझ लिया जाए और फिर सम्पूर्ण कथा वाली पुस्तक से ही कथा कही जाए, तो काम बहुत सहज और व्यवस्थित ढंग से चल सकता है।

**प्रकाशक**

# सत्यनारायण व्रत कथा

## प्रथमो ऽध्यायः

व्यास उवाच -

**एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः ।**

**पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे सूतं पौराणिकं खलु ॥१ ॥**

एक बार नैमिषारण्य नामक पुण्य स्थल में शौनक आदि ऋषियों ने महान् पौराणिक सूत जी से अपनी जिज्ञासा प्रकट की ।

शौनक उवाच-

**व्रतेन तपसा किम्वा प्राप्यते वाच्छितं फलम् ।**

**तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ॥२ ॥**

श्रोता ऋषियों ने पूछा - ऐसा कौन सा व्रत अथवा तप है, जिसे करने से सभी लोग वांछित फल पा सकते हैं, यह विषय हमें कृपया भली प्रकार समझाइये ।

सूतजी बोले - एक बार देवर्षि नारद ने भी भगवान विष्णु से ऐसा ही प्रश्न किया था । उस प्रसंग को मैं कहता हूँ; आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें ।

**एकदा नारदो योगी परानुग्रहकांक्षया ।**

**पर्यटन्विविधांल्लोकान् मर्त्यलोकमुपागतः ॥३ ॥**

एक बार नारदजी लोक कल्याण की भावना से विविध लोकों में विचरण करते हुए मृत्यु लोक (पृथ्वी) में पहुँचे ।

**ततो दृष्ट्वा जनान्सर्वान् नानाक्लेशसमन्वितान् ।**

**नाना योनिसमुत्पन्नान् क्लिश्यमानान्स्वकर्मभिः ॥४ ॥**

वहाँ उन्होंने अधिकांश मनुष्यों को अपने ही असत्कर्मों के प्रभाव से नाना

प्रकार के कष्ट पाते देखा ।

यहाँ अपने ही कर्मों के कारण दुःख भोगने के तथ्य पर प्रकाश डालते हुए आवश्यक विस्तार के साथ नीचे की एक या अधिक कथाओं द्वारा अपने कथन की पुष्टि की जाय ।

## उदाहरण

१- राजा दशरथ राम के वियोग में जल विहीन मछली की तरह छटपटा रहे थे । देवी कौशल्या उन्हें समझाकर धैर्य दिलाने का प्रयास कर रही थीं । मन्त्री सुमन्त्र के मन में प्रश्न उठा कि पुत्र वियोग तो रानी को भी है, पर दुःख राजा को अधिक क्यों भोगना पड़ रहा है । प्रश्न का समाधान तब हुआ,जब होश आने पर दशरथ स्वयं कौशल्या जी को अपने द्वारा श्रवण कुमार के वध की कथा सुनाने लगे । सुमन्त्र समझ गये कि राजा के अपने कर्म ही उन्हें दुःख दे रहे हैं ।

२- ज्ञानी योद्धा बर्बरीक के सिर को दिव्य दृष्टि प्रदान करके भगवान कृष्ण ने उसे एक वृक्ष की चोटी पर महाभारत का युद्ध देखने के लिये रख दिया था । युद्ध के बाद पाण्डव योद्धा अपनी-अपनी शेखी दिखाते हुए युद्ध-विजय में अपनी भूमिका का बखान करने लगे । भगवान कृष्ण ने प्रत्यक्षदर्शी बर्बरीक से निर्णय लेने की सलाह दी । बर्बरीक उनकी बातें सुनकर हँसे और कहने लगे कि तुम सब कृष्ण के साथ रहकर भी अज्ञानी ही रहे । अरे, यह तो सब अपने दुष्कर्मों के प्रभाव से चलती-फिरती लाशों की तरह ही थे । इनके दुष्कृत्यों ने इन्हें खोखला कर दिया था । ईश्वरीय नियमानुसार यह स्वतः ही नष्ट हुए हैं ।

३- कृष्ण बहेलिये का तीर खाकर पीड़ा से छटपटा उठे । बहेलिया क्षमा माँगने तथा दुःख प्रकट करने लगा । कृष्ण ने उत्तर दिया - तुम दुःख मत करो, बालि को इसी प्रकार मारने के कारण मुझे कर्म व्यवस्थानुसार यह कष्ट सहना आवश्यक था ।

४- कंस वध के बाद देवर्षि नारद मथुरा पहुँचे । राजा उग्रसेन ने उनसे पूछा - देवर्षि ! कंस का वध तो अब हुआ, किन्तु वर्षों तक वह मर्मांतक पीड़ा पाता

रहा । उसे नींद नहीं आती थी और विक्षिप्त की तरह चीख-चीख पड़ता था । क्या यह मृत्यु के भय से था अथवा अन्य कोई कारण था । नारदजी बोले, "राजन् वह उसके स्वयं के पाप कर्मों की प्रतिक्रिया थी । उसके कुकर्म ही उसे पीड़ा पहुँचाते रहे, अन्यथा मृत्यु तो हर मनुष्य की स्वाभाविक ढंग से आ जाती है, उसके पूर्व वर्षों तक भयानक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

५- राजा नहुष को ऋषि शाप के कारण इन्द्र पद से च्युत होकर अजगर योनि में जाना पड़ा । उसकी दुर्दशा देखकर वायु देव ने देवगुरु बृहस्पति से पूछा कि उसे इस स्थिति में पहुँचाने के लिए क्या किसी ने कपट-चाल चलकर उसे शाप दिलवा दिया ? गुरु बृहस्पति ने उत्तर दिया- नहीं, परन्तु उसे शाप दिलाने तथा इस प्रकार दीन-हीन स्थिति में ठेल देने के लिये उसके अपने ही पाप कर्म उत्तरदायी हैं । अपने ही श्रेष्ठ कर्मों से वह इन्द्र पद का अधिकारी बना था और पाप कर्मों में प्रवृत्त होकर स्वयं ही अपने पतन का कारण बन गया ।

* लोगों को पीड़ित देखकर देवर्षि दु:खी हुए और समस्या का समाधान खोजने लगे :-

**केनोपायेन चैतेषां दु:खनाशो भवेत् ध्रुवम् ।**
**इति संचिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ॥५ ॥**

प्राणियों के कष्ट और दु:ख कैसे मिटें, यह सोचते हुए वे विष्णुलोक जा पहुँचे ।

* वहाँ उन्होंने भगवान से प्राणियों के कष्ट निवारण का उपाय पूछा :- भगवान ने उन्हें बतलाया कि जब मनुष्य अपने लिए निर्धारित सत्य पथ से विचलित हो जाते हैं, तभी ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है । इस स्थिति से उबरने के लिए व्रतपूर्वक निर्धारित अनुशासनों के पालन का अभ्यास करना चाहिए ।

श्री भगवानुवाच-

**सत्यनारायणस्यैकं व्रतं सविधिविधानतः ।**
**कृत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा चांते मोक्षमवाप्नुयात् ॥६ ॥**

भगवान विष्णु बोले - हे नारद ! "सत्य नारायण व्रत" एक ऐसा व्रत है, जिसे विधि-विधानपूर्वक करने से इस जीवन में सुख की प्राप्ति होती है और मरने पर सद्गति अथवा यश मिलता है ।

**नारायणस्वरूपं हि सत्यमस्ति च यो नरः ।**
**व्रतं गृह्णाति सत्यस्य भवति तस्यानुकम्पितः ॥७ ॥**

भगवान ने कहा- सत्य ही भगवान का सच्चा स्वरूप है । ऐसा समझकर जो मनुष्य सत्यव्रत को अपनाता है, वह प्रभु की कृपा का लाभ अवश्य पाता है ।

भगवान व्यक्ति रूप नहीं, भाव रूप हैं । सत्य उनका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है- यह प्रतिपादन करते हुए, समर्थन में नीचे दी हुई कथाओं का उपयोग किया जा सकता है ।

## कथा प्रसंग

१- राजा हरिश्चन्द्र परीक्षा में सफल हुए तथा भगवान ने प्रकट होकर उन्हें अपने श्रेष्ठ भक्त की मान्यता दी । प्रश्न उठा कि यह तो वर्षों तक अनवरत श्रम में लगे रहे, पूजा-उपासना का इन्हें समय ही नहीं मिला, फिर इन्हें श्रेष्ठ भक्त का सम्मान क्यों कर मिल गया ? देवगुरु बृहस्पति ने समझाया - "वत्स ! हरिश्चन्द्र सतत् उपासना में लगे रहे हैं, उन्होंने सत्य रूप में प्रभु की उपासना की है । उनके मन से सत्य की मर्यादा, प्रतिष्ठा का विचार क्षण भर को भी नहीं हटा । भगवान की यह श्रेष्ठ उपासना है, इसीलिए उन्हें यह सम्मान मिला ।

२- राजा दशरथ राम का विछोह सह नहीं सकते थे । लोगों ने सलाह दी कि आपको अपना निर्णय बदलने का हक है- कैकेयी की बात मत मानिये । राजा ने कहा कि मुझे राम का पिता बनने का सौभाग्य जिस सत्याचरण के

प्रभाव से मिला है, उसे त्याग कर मैं अपने स्तर से गिरना नहीं चाहता । मुझे वचन सोच-समझकर देना चाहिए था, पर अब सत्य की मर्यादा भंग करके जीवन का मोह करना मुझे स्वीकार नहीं और सत्यनिष्ठ राजा इसलिए जीवन मुक्त की गति पा सके ।

३- गाँधी जी से एक अंग्रेज ने पूछा कि विपरीत स्थिति में विरोधियों के बीच भी आप सही बात कहने में जरा भी नहीं झिझकते, इसका क्या कारण है ? गाँधी जी बोले - मैं सत्य को परमात्मा का रूप ही मानता हूँ । सत्य के पक्ष में रहने से मुझे लगता है कि मैं सर्व समर्थ प्रभु की गोद में बैठा हूँ । उसकी गोद में होने से फिर किसी का भय कैसे लग सकता है ?

४- भीष्म शर-शैय्या पर लेटे थे । मामा शकुनि उनके पास गये और बोले- "आपने शत्रु पक्ष को अपनी दुर्बलता बताकर स्वयं भी कष्ट पाया तथा हमारी भी हानि की, ऐसा करना आपके लिए उचित न था । भीष्म ने कहा - "शकुनि तुम भूलते हो कि कौरवों के अन्न से शरीर पालने के कारण केवल शरीर से मैं तुम्हारे पक्ष में था । मेरा अन्त:करण प्रभु के अनुदानों से पलता है, अत: मन से मैं उसी पक्ष में हूँ, जिस पक्ष में भगवान कृष्ण हैं ।शकुनि ने प्रश्न किया -"क्या आप भी उस छलिया कृष्ण को ईश्वर मानते हैं ? भीष्म बोले- कृष्ण को ईश्वर मानूँ न मानूँ, पर सत्य पाण्डवों के पक्ष में हैं । मैंने जीवन भर सत्य को ही ईश्वर मानकर उसकी आराधना की है । इसलिए अपनी प्रतिज्ञायें जीवन भर निभा सका । वही मेरा सच्चा इष्ट है ।

**नारद ! मर्त्यलोकेऽस्मिन् मानवा: सत्यधर्मयो: ।**
**लभन्ते दु:खमत्यन्तं त्यागेनैव च सर्वथा ॥८ ॥**

हे नारद ! संसार में लोग सत्य धर्म की उपेक्षा करने के कारण ही अत्यधिक कष्ट पा रहे हैं ।

**व्यवहारं च सत्यं चेत् ते धर्माचरणं तथा ।**
**समुद्यता: स्यु: कर्तुं वै मुक्ति दु:खेभ्य: प्राप्नुयु: ॥९ ॥**

यदि संसारी मनुष्य शब्दों से ही नहीं, आचरण से भी सत्य धर्म के पालन के लिए तत्पर हो जायें, तो निश्चित रूप से दु:खों से छुटकारा पा सकते हैं।

**चत्वार: सन्ति धर्मस्य पादा वृषभरूपिण:।**
**विवेक: संयम: सेवा तुरीय: साहसं शुभ: ॥१०॥**

धर्मरूपी वृषभ के चार चरण कहे गये हैं। (१) विवेक (२) संयम (३) सेवा और (४) साहस। सत्य धर्मपालक के जीवन में यह सभी गुण रहते हैं।

धर्म के चार चरणों का महत्त्व समझाते हुए, उन्हें जीवन में धारण करने, विकसित करने और प्रयुक्त करने की प्रेरणा दी जाय। उदाहरण रूप में निम्नलिखित कथाओं का उपयोग किया जा सकता है।

## उदाहरण

**विवेक –**

धर्म विवेक - सम्मत ही होता है। विवेकपूर्ण निर्णय लेने वालों को धर्म पालन में अग्रणी माना गया है। स्थूल दृष्टि से भले ही उनके आचरण विपरीत दिखते हों; जैसे-

**पिता तज्यो प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।**
**बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन, भे मुद मंगलकारी॥**

पिता, बड़े भाई, माता, गुरु एवं पति की आज्ञा मानना धर्मसंगत कहा जाता है; किन्तु प्रह्लाद का पिता हिरण्यकश्यप, विभीषण का भाई रावण, भरत की माँ कैकेयी, बलि के गुरु शुक्राचार्य तथा गोपियों के पति उन्हें श्रेष्ठ-मार्ग पर ईश्वरीय-मार्ग पर बढ़ने से रोकते थे। अत: उन्होंने परम्परा की जगह विवेक को महत्त्व दिया तथा उनकी अवज्ञा कर दी। विवेक - सम्मत होने से उन्हें धर्म परायण ही माना गया।

**संयम-**

धर्म का एक चरण संयम भी है। संयमशील ही धर्माचरण में स्थिर रह

पाता है, अन्यथा असंयम उसे पतित कर देता है । संयम की महत्ता के अनेक उदाहरण हैं; जैसे-

१- लक्ष्मण ने संयम द्वारा ही वह शक्ति प्राप्त की थी, जिसके द्वारा मेघनाद को मारकर धर्मस्थापना में योगदान दे सके ।

२- अर्जुन भी इन्द्रियजयी कहे जाते थे, इसीलिये अपराजेय रहे । स्वर्ग में अप्सरा उर्वशी ने उन्हें विचलित करने का प्रयास किया, किन्तु वे दृढ़ रहे । उसे भी उन्होंने माँ रूप में ही स्वीकार किया ।

३- शिवाजी पर भवानी की कृपा थी । वह भी इसीलिये कि वे नारी मात्र के प्रति मातृ भावना रखते थे । शत्रु पक्ष की सुन्दरी गौहरबानू को भी उन्होंने माँ कहकर ही सम्बोधित किया ।

४- सती गांधारी की आँखों में दिव्य शक्ति होने का उल्लेख मिलता है । दुर्योधन के जितने शरीर पर उनकी दृष्टि पड़ी, वह वज्र जैसा हो गया था । यह शक्ति संयम से ही आयी थी । पति के अंधे होने के कारण उन्होंने स्वयं भी नेत्रों का उपयोग करना छोड़ दिया था । सांसारिक आकर्षण में शक्ति का अपव्यय बचा और उनमें अद्‌भुत क्षमता जाग गई ।

सभी ऋषि मुनि संयम द्वारा अपनी आवश्यकताओं को कम से कम करके तथा आंतरिक शक्तियों को विकसित करके स्वयं गौरव पाते थे और समाज का हित साधन करने में समर्थ होते थे ।

**सेवा -**

धर्माचरण में सेवा आवश्यक है । सेवा का महत्त्व समझने वालों ने यश और जीवनोद्देश्य की प्राप्ति सफलतापूर्वक की है-

(१) भगवान राम ने हनुमान जी को सेवा का महत्त्व बताते हुए कहा -

**सोई अनन्य जाके अस मति न टरई हनुमंत ।**
**मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।**

हनुमान जी ने उसे अपना गुरु मंत्र बना लिया और पूरी तत्परता से सेवा

कार्य में अपनी सारी शक्ति-सामर्थ्य लगा दी। फलस्वरूप वे भगवान के साथ-साथ पूजा के अधिकारी बन गये।

२- भगवान कृष्ण सेवा का महत्त्व समझते थे और उसकी प्रतिष्ठा चाहते थे। इसलिये उन्होंने पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में अतिथियों के पैर धुलाने और जूठी पत्तलें उठाने का कार्य अपने जिम्मे लिया था।

३- शबरी भीलनी थी। उसे लोग अन्य प्रकार का भजन-पूजन न करने देते थे। उसने मातंग ऋषि के आश्रम में रहने वाले तपस्वियों और ब्रह्मचारियों आदि की सेवा का कार्य मूक निष्ठा के साथ प्रारम्भ कर दिया। उनके मार्ग को साफ करना, सरोवर को गन्दा न होने देना आदि कार्य तत्परता से करती रही। बदले में कुछ आकांक्षा भी नहीं की। फलस्वरूप भगवान राम स्वयं उसके यहाँ पहुँचे और उसे उच्चतम सम्मान दिया।

४- सिक्खों के गुरु रामदास के अनेक योग्य शिष्य थे। अर्जुनदास उनकी तुलना में कम योग्य थे, किन्तु सेवा-साधना में उनकी तन्मयता तथा लगन अनुपम थी। बर्तन साफ करने जैसा छोटा समझा जाने वाला कार्य, वे पूरी निष्ठा और तत्परता से करते रहे। यही कारण था कि गुरु रामदास जी ने उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

**साहस-**

धर्माचरण के लिये सत् साहस अनिवार्य है, अन्यथा व्यक्ति समर्थ होकर भी श्रेष्ठ मार्ग पर कदम नहीं बढ़ा पाता। साहस के उदाहरण निम्न प्रसंगों में स्पष्ट होते हैं-

१- जटायु ने देखा कि राक्षसराज रावण सीता को उनकी इच्छा के विरुद्ध ले जा रहा है। प्रतिरोध न होने से गलत कार्य करने वाले का हौंसला बढ़ता है। उसने राक्षसराज को चुनौती देते हुए भरपूर प्रतिरोध किया और धर्माचरण की दिशा में एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

२- नचिकेता के पिता ने यज्ञ किया और दिखावे के रूप में निरर्थक वस्तुओं

का दान करनें लगे । नचिकेता को यह बुरा लगा । उसने साहसपूर्वक पिता से सही ढंग से दान करने का आग्रह किया । उन्होंने डर-भय दिखाने के लिये कहा - "तू ही बड़ा उपयोगी है, तुझे ही दान कर दूँगा ।" नचिकेता विचलित न हुआ, "पूछा- मुझे किसको दान में देते हैं ।" पिता ने झल्लाकर कहा "यम को" । लोगों के हजार मना करने पर भी नचिकेता नहीं माना । स्वयं यमराज के पास चला गया और संजीवनी विद्या का अधिकारी बना । चोट खाकर उसके पिता ने भी दिखावा छोड़कर सही मार्ग अपना लिया ।

३- पाण्डव जब अज्ञातवास में थे । चक्रपुर में उन्हें पता लगा कि एक राक्षस के भोजन के लिये नित्य एक व्यक्ति भेजा जाता है । इस अनीति को समाप्त करना उचित था, भीम राक्षस को मारने में समर्थ भी थे । पर अज्ञातवास का भेद खुलने पर पुन: अज्ञातवास की अवधि पूरी करनी पड़ती । पाण्डवों ने धर्म कार्य के लिये साहस दिखाया । पुन: अज्ञातवास का खतरा उठाने को तैयार हो गये । भीम को एक ब्राह्मणी के इकलौते पुत्र के स्थान पर राक्षस का आहार बनने भेज दिया और भीम ने उसे द्वन्द्व युद्ध में मार गिराया ।

४- इन्द्र ने वज्र बनाने के लिये ऋषि दधीचि से उनकी हड्डियों की माँग कर दी । ऋषि ने उसे साहस के साथ स्वीकार किया तथा लोक हित में शरीर छोड़ने में जरा भी नहीं हिचके ।

५- समर्थ गुरु रामदास विवाह मण्डप में बैठे थे । परम्परा के अनुसार पुरोहित बोला "लड़के-लड़की सावधान", रामदास ने विचारा कि यही अवसर है निर्णय का, परिवार में फसूँ या लोकमंगल के पथ पर बढ़ चलूँ । बुद्धि ने लोक मंगल का पक्ष लिया । साहस ने साथ दिया और वह उठकर भाग खड़े हुए, किसी के हाथ न आये । समय पर साहस दिखा सकने के कारण ही वे समर्थ गुरु रामदास बन सके ।

**माल्याकार: इवोद्याने सदा कृत्यपरायण: ।**
**पोषणं वर्धनं चास्य कुरुते नियमैर्व्रत: ॥११ ॥**

सत्यधर्मपरायण व्यक्ति अपने परिवार और समाज को एक उपवन मानकर कर्त्तव्यनिष्ठ माली की तरह उसका शोधन, पोषण और संवर्धन करता है ।

माली के कर्त्तव्यों उत्तरदायित्वों के माध्यम से संसार को सुरम्य बनाने की प्रेरणा दी जाय। निम्नलिखित कथा द्वारा कर्त्तव्यों को स्पष्ट किया जा सकता है।

## उदाहरण

(१) एक राजा ने दो माली रखे और उन्हें एक-एक बगीचा सौंप दिया। मंत्रियों ने उन्हें समझाया कि राजा को प्रसन्न रखना उनका परम कर्त्तव्य है। एक माली ने बगीचे में राजा का चित्र स्थापित करके अधिकांश समय उसकी पूजा, वंदना, आरती में लगाना प्रारम्भ कर दिया। दूसरे ने राजा की रुचि का ध्यान रखकर उसी के अनुसार सुन्दर फल-फूल उगाने प्रारम्भ कर दिये। राजा निरीक्षण के लिये पहुँचे, तो पहले माली से उन्हें बहुत निराशा हुई और दूसरे को उन्होंने पारितोषिक देकर सम्मानित किया।

२- शिष्य त्रिविक्रम और चित्रांगद गुरु के पास पहुँचे तथा अपने-अपने उपवनों की प्रगति की सूचना दी। गुरु देव ने उनका निरीक्षण किया, तो पाया चित्रांगद के बगीचे के वृक्ष कमजोर थे और अस्त-व्यस्त एवं कुरूप भी। त्रिविक्रम के बाग में वृक्ष पुष्ट तथा सुडौल थे। चित्रांगद कहने लगे गुरु देव मैंने पौधों को खाद-पानी त्रिविक्रम से कम नहीं दिया। उनको जरा भी कष्ट नहीं होने दिया, फिर भी ये पुष्ट नही लगते हैं, दैव का प्रकोप है। गुरु हँसे-बोले - बेटा मात्र खाद-पानी ही सब कुछ नहीं, तुमने उनकी कटाई-छँटाई नहीं की, इसलिये यह बेडौल हैं। इनके आस-पास अनेक झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। यह उनके हिस्से का आहार खींच लेते हैं। वत्स ! निराई और छँटाई भी सीखो।

**लोभममत्वमात्सर्य मदकामादिदूषणैः।**
**रहितं हृदयं तेषां न छिद्रान्वेषिणश्च ते ॥१२॥**

सत्यनिष्ठ लोगों का हृदय लोभ, ममत्व (मोह), मात्सर्य (ईर्ष्या-डाह), मद (अहंकार) और काम (इच्छा) आदि दोषों से शुन्द्र होता है तथा वे दूसरों के दोष

भी नहीं ढूँढ़ा करते ।

(उक्त दोषों की हानियाँ समझाकर सत्यपरायण बने रहने की प्रेरणा के लिये नीचे लिखे उदाहरणों में से कुछ का उपयोग कर सकते हैं ।)

**लोभ-**

किसी वस्तु, पद अथवा यश के आकर्षण में व्यक्ति विवेक खो बैठता है । सत्यसाधक विवेक से यथार्थ को समझ कर लालच में नहीं पड़ता । लोभी सत्य भूल कर दुर्गति वरण कर लेता है ।

उदाहरण - (१) मछली काँटे में लगे आटे के लालच में जान गँवाती है । पक्षी दाने के लोभ में शिकारी का जाल नहीं देख पाते और फँसते हैं । मनुष्य स्वादिष्ट भोजन के लोभ में पेट खराब करके रोगी बन जाते हैं । पैसे के लालच में पड़ कर लोग मनुष्यता भूल जाते हैं, भाईचारा तोड़कर कुकृत्य करते देखे जाते हैं ।

(२) दुर्योधन द्वारा सेनापति बनाये जाने की लालच में अश्वत्थामा ने नियम विरुद्ध रात में सोते हुए पाण्डव पुत्रों की नृशंस हत्या कर दी और जीवन भर के लिये कलंक तथा अपयश कमाया, मिला कुछ भी नहीं ।

(३) लालच में पड़कर जयचंद ने पृथ्वीराज को धोखा दिया - मोहम्मद गोरी का साथ दिया । अंभि ने पोरस को धोखा देकर सिकन्दर का साथ दिया । दीवान दूल्हाजू नामक सरदार ने रानी झाँसी को धोखा देकर अंग्रेजों की मुखबिरी की । अंग्रेजों ने काम निकल जाने पर उसे तोप से उड़ा दिया । सभी घाटे में रहे ।

**मोह -**

प्रेम अपने आत्मीय भाव के विस्तार के लिये तथा दूसरों को प्रगति पथ पर बढ़ाने के लिये होता है । मोह में पड़ कर व्यक्ति प्रेम का विकृत उपयोग करने लगता है । इस कारण उचित-अनुचित भूलकर अपनी और दूसरों की प्रगति में बाधक बनता है ।

(१) राजा दशरथ कैकेयी के मोह में पड़कर बिना सोचे वचन दे बैठे, जो सभी के लिए गंभीर संकट का कारण बना ।

(२) पुत्र मोह में पड़कर द्रोणाचार्य ने गुरुकुल चलाने की अपेक्षा राजा की नौकरी कर ली । फलस्वरूप शिष्यों - कौरवों से अपमानित होते रहना पड़ा, धर्मपक्ष छोड़ना पड़ा और पुत्र मोह में ही मारे गये ।

**काम -**

कामेच्छा के वशीभूत भी मनुष्य सत्यपथ भूल जाता है । क्षणिक सुख के लिए स्थायी सुख-सौभाग्य खो देता है-

(इन दुर्गुणों से होने वाली हानियाँ समझाने के लिए नीचे लिखे कथनों की भी सहायता ले सकते हैं ।)

## उदाहरण-

१- सुन्द-उपसुन्द महाबली दैत्य थे । उन्होंने वरदान माँगा था कि वे परस्पर एक दूसरे को मारें तभी मरें, अन्यथा नहीं । उनमें बड़ा प्रेम था । भगवान ने मोहिनी रूप बनाया । दोनों उस पर मोहित हो गये । मोहिनी ने उनसे अलग-अलग बातचीत की । मोहिनी की आसक्ति में वे एक दूसरे से लड़कर नष्ट हो गये ।

२- इन्द्र और चन्द्रमा ने मिलकर गौतम ऋषि तथा उनकी पत्नी अहिल्या से छल किया । चन्द्रमा ने मुर्गा बनकर बाँग लगाई, सबेरा हुआ समझ कर ऋषि गंगा स्नान करने चल पड़े । इन्द्र ऋषि का वेष बनाकर अहिल्या का सतीत्व भंग कर दिया । फलस्वरूप दोनों को शाप लगा और वे सदा के लिए कलंकित हो गये ।

(३) राजा ययाति ने अपनी आयु पूरी होने पर अपने पुत्र की जवानी माँग ली, फिर भी कामेच्छा तृप्त न हुई, फलतः उसे निकृष्ट योनि में जाना पड़ा । नहुष इन्द्र पद पाने के बाद भी इन्द्राणी पर कुदृष्टि डालने के कारण ही सर्प योनि में गये ।

**मात्सर्य (ईर्ष्या-डाह) -**

यह दूसरे की प्रगति को देखकर स्वयं ऊंचा उठने की प्रेरणा लेने के स्थान पर, उन्हें गिराने-अपमानित करने की प्रवृत्ति है । मनुष्य इसी दोष के कारण यह सत्य भूल जाता है- हमारी विभूतियाँ स्वयं को तथा दूसरों को उठाने के लिए हैं, गिराने के लिए नहीं ।

## उदाहरण-

१- भक्त अंबरीष की ख्याति, निश्छल स्वभाव और सेवा भावना के कारण फैलने लगी । ऋषि दुर्वासा को उनके यश से ईर्ष्या हुई और वे अकारण नीचा दिखाने के लिए शिष्यों सहित पहुँचे और केवल इस बात पर क्रुद्ध हो उठे कि अबंरीष ने उन्हें भोजन कराये बिना चरणामृत और तुलसीदल क्यों पान कर लिया ? उन पर कृत्या शक्ति छोड़ दी । अम्बरीष शान्त बने रहे । भगवान विष्णु ने यह अनीति देखकर सुदर्शन चक्र छोड़ा । कृत्या को समाप्त करके वह दुर्वासा के पीछे लग गया, जब तक उन्होंने अंबरीष से क्षमा नहीं माँग ली, वे तीनों लोकों में भागने पर भी निर्भय न हो सके ।

२- पाण्डवों को छल से जुए में हराकर कौरवों ने उन्हें शर्त के अनुसार वनवास के लिए भेज दिया । वे परस्पर सद्भाव के कारण वहाँ भी सुख से रहने लगे । ईर्ष्यावश उन्हें चिढ़ाने के लिए कौरव दल-बल सहित वैभव प्रदर्शन करने जंगल में पहुँचे । वहाँ यक्षों के सरोवर में स्नान करने पर झगड़ा हुआ और यक्षों ने कौरवों की बन्दी बना लिया । सूचना पाकर पाण्डवों ने ही उन्हें छुड़ाया । कौरवों को बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा ।

३- ऋषि वशिष्ठ ने विश्वामित्र को बिना पात्रता पाये, ब्रह्मर्षि कहने से इन्कार कर दिया । विश्वामित्र उनसे द्वेष करने लगे तथा अनेक प्रकार से हानि पहुँचाने का प्रयास किया । छल से उनके १०० पुत्रों को मार डाला । इससे उन्हें बहुत बदनामी उठानी पड़ी । पर जब इसे छोड़कर वे वशिष्ठ जी के सामने नम्र बने, तभी ब्रह्मर्षि पद के योग्य बन सके ।

४- एक परिवार में बुड्ढा, बुढ़िया तथा एक बच्चा केवल तीन थे। उन पर दया करके शिव-पार्वती ने उनसे एक-एक वरदान माँगने को कहा। बुड्ढा और बुढ़िया का ईर्ष्यालु स्वभाव था। बुढ़िया ने मांगा "मुझे सुन्दर युवती बना दें।" बुड्ढा ईर्ष्या से जल उठा और मांगा "इसे सुअरिया बना दें।" यह देख बच्चा रो उठा और उसने मांगा - "मेरी मां ज्यों की त्यों हो जाये"। तीनों वरदान पूरे हो गये, पर हाथ कुछ भी न लगा।

३- उक्ति है **"उघरे अन्त न होहि निबाहू, कालनेमि जिमि रावण राहू"** - छल करने वालों का भेद कभी न कभी खुल ही जाता है और फिर वे हानि उठाते हैं। कालनेमि संजीवनी बूटी लेने जाते हुए हनुमान को धोखा देने ऋषि बनकर बैठा था, पर मारा गया। रावण ने छल से सीता हरण किया, पर उसे अपमान सहते हुए वंश सहित नष्ट होना पड़ा। राहु देवताओं का वेष बनाकर अमृत पान करने उनकी पंक्ति में जा बैठा, पर सूर्य व चन्द्र ने पहचान लिया तथा सिर कटा बैठा।

**मद (अहंकार) -**

यह मनुष्य एवं देव सभी को श्रेष्ठ मार्ग से भटका देता है।

१- रावण, कंस, हिरण्यकश्यप, भस्मासुर आदि राक्षसों को अहंकार हो गया था कि उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता, इसीलिए वे खुला अनीति करने लगे थे। यह शाश्वत सिद्धान्त वे भूल गये कि अनीति का अन्त आता ही है। उन्हें भी तिरस्कार, अपमान एवं घृणा का पात्र बनना और नष्ट होना पड़ा।

२- भीम को अपनी शक्ति का अंहकार हो गया। कृष्ण भगवान ने सोचा कि इनका अभिमान दूर न किया गया, तो अनिष्ट होगा। अत: हनुमान जी को समझा कर भेज दिया। वे मार्ग में बुड्ढे का वेष बनाकर पड़ गये। भीम आये, तो उन्हें रास्ता रोकने के लिए अहंकारपूर्वक अभद्र शब्द कहने लगे। हनुमानजी ने विनय की कि मैं चल नहीं सकता, आप ही मुझे एक ओर खिसका दें। भीम ने तिरस्कारपूर्वक प्रयास किया, फिर सारा बल लगा दिया, पर उन्हें हिला भी

न सके। उनका अहंकार गल गया, तो हनुमान जी ने अपना रूप दिखाकर उन्हें नम्र बने रहने का उपदेश दिया।

३- नारद जी की तपस्या कामदेव भंग न कर सका। नारद जी को अहंकार हो गया। सबसे अपनी बड़ाई कहते फिरे, किन्तु विश्वमोहिनी पर मोहित होकर स्वयं तमाशा बनना पड़ा, भगवान से भी लड़ पड़े। बाद में बोध हुआ, तो पछताना पड़ा।

**नारायणं सत्यरूपं यः स्थापयति सर्वदा।**
**स एव जायते पात्रं प्रसादस्य प्रभो सदा ॥१३॥**

नारायण सत्य रूप ही हैं, जो व्यक्ति यह आस्था, निष्ठापूर्वक सुदृढ़ता के साथ जीवन में समाविष्ट कर लेता है, वह निस्संदेह भगवान की परम कृपा का अधिकारी बन जाता है।

नारद जी भगवान से सत्यनारायण व्रत का माहात्म्य और विधि-विधान समझ कर चल पड़े और संसार में व्रत का प्रचार करने लगे।

॥इति श्री सत्यनाराणव्रतकथायां प्रथमोऽध्यायः समाप्तः॥

# द्वितीयो ऽध्याय :

सूत उवाच -

**अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कृतं येन पुरा द्विज।**
**कश्चित्काशीपुरे रम्ये ह्यासीद्विप्रोऽतिनिर्धनः ॥१४॥**

सूतजी कहने लगे - हे ऋषियों ! अब आपको सत्यव्रत धारण करने वालों की कथा सुनाता हूँ। किसी समय काशी नगरी में एक बहुत गरीब ब्राह्मण निवास करता था।

**द्विज नाम्ना सदानन्दो दैन्यभावमुपागतः।**
**उदरपूर्त्तये भिक्षन् दुःखेनाविचरत्सदा ॥१५॥**

ब्राह्मण का नाम सदानन्द था। वह दरिद्रता के कारण दीन भाव से व्याकुल होकर उदर पूर्ति के लिए भीख माँगता हुआ इधर-उधर घूमता- फिरता था।

भगवान उसे सही दिशा देने के उद्देश्य से एक वृद्ध ब्राह्मण के रूप में उसके पास पहुँच कर बोले -

वृद्ध ब्राह्मण उवाच -

**दूरं गतस्त्वं हे विप्र! ह्यपेक्षितं सत्कर्मणः।**
**कष्टं प्राप्नोषि तेनैव निदानं त्वसत्सेवनम् ॥१६॥**

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा - हे सदानन्द तुम ब्राह्मणोचित सत् मार्ग से भटक गये हो, असत् मार्ग पर चलने के कारण ही तुम यह कष्ट पा रहे हो।

ब्राह्मण के कार्य है- १. स्वयं अपना तथा समाज का ज्ञान संवर्धन २. अपना तथा समाज का चरित्र संवर्धन तथा ३. श्रेष्ठ कार्यों के लिये सहयोग देना और दिलाना। (इनकी व्याख्या करें तथा आवश्यकतानुसार उदाहरण दें।)

## उदाहरण-

**ज्ञान संवर्धन-**

अज्ञान ही मनुष्य के दु:खों का कारण बनता है; परन्तु ज्ञान का संग्रह और प्रसार तपस्वी कर सकते हैं। यह उत्तरदायित्व ब्राह्मण का है-

१- ऋषियों ने देश में धर्म तन्त्र के द्वारा ज्ञान संवर्धन की व्यापक व्यवस्था बना रखी थी। स्थान-स्थान पर चर्चा तथा सत्संगों के माध्यम से यह कार्य किया जाता था। आश्रम में ऋषि ज्ञानार्जन करते थे और उसे समाज में फैलाते थे, इसीलिये उनका सम्मान था। जन सामान्य से लेकर राजा तक उनसे मार्गदर्शन लेते थे। सूत-शौनक, याज्ञवल्क्य-वशिष्ठ आदि के नाम इस संदर्भ में प्रख्यात है। नारद जी तो इसी उद्देश्य से बराबर घूमते ही रहते थे।

२- नानक सामान्य व्यापारी के पुत्र थे, कबीर अनाथ थे। जुलाहे ने उन्हें पाला, वे शिक्षित भी नहीं थे, नामदेव और रैदास छोटे स्तर के व्यवसाय करके निर्वाह चलाते थे, किन्तु ज्ञान साधना और दूसरों को ज्ञान देने के कारण ही श्रेष्ठ संत-पूजनीय बने।

३- राजकुमार सिद्धार्थ रोगी, वृद्ध और मृतक को देखकर भयभीत हो गये थे। किन्तु ज्ञान प्राप्त होने पर बुद्ध कहलाये। सारे एशिया में ज्ञान का प्रसार करके अवतार के रूप में पूजित हुए।

**चरित्र संवर्धन-**

मनुष्य की श्रेष्ठता की परख उसके आचरण से होती है। जानकारी होना अच्छी बात है, पर उसके आधार पर आचरण न किया जा सके, तो वह ज्ञान भी निरर्थक हो जाता है।

१- रावण पुलस्त्य ऋषि के वंश का था, विद्वान् भी बेजोड़ था, किन्तु चरित्र निर्माण में चूक जाने के कारण राक्षस बन गया।

२- बलि राक्षस वंश के थे। किन्तु शुक्राचार्य के सान्निध्य से अपने चरित्र को इतना श्रेष्ठ बनाया कि देवता भी लज्जित होने लगे। देवताओं की सहायता

के लिए भगवान भी उनका अनिष्ट न करके उनके सामने याचक बनकर पहुँचे तथा चरित्र की श्रेष्ठता स्वीकार की ।

३- देवताओं के लिए शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखने के लिये देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने साहस किया । उन्होंने शुक्राचार्य को अपना असली परिचय देकर आने का उद्देश्य भी बता दिया । कहा कि यदि अपने आचरण से मैं आपको प्रसन्न कर सकूँगा, तो विद्या लेकर ही जाऊंगा । शुक्राचार्य देवताओं को वह विद्या बताना नहीं चाहते थे; किन्तु चरित्र की विजय हुई । शुक्राचार्य तथा उनकी पुत्री देवयानी कच के चरित्र से इतने प्रभावित हुए कि संजीवनी विद्या दे ही दी ।

४- रामराज्य और रावणराज्य में वैभव और सम्पन्नता समान थी, किन्तु अन्तर केवल राजा और नागरिकों के चरित्र का था । राम के पास गुरु वशिष्ठ जैसे चरित्र सम्पन्न ब्राह्मण, नागरिकों को सच्चरित्रता का पाठ पढ़ाते रहते थे । इसीलिये रामराज्य आदर्श राज्य हुआ ।

(सेवा-सहयोग का प्रसंग चौथे अध्याय में जोड़ा गया है ।)

**आकर्षणं हि भिक्षायाः त्याज्यं चान्नमयन्त्वया ।**
**समाजाल्लभते विप्रो यदनेकगुणं पुनः ।**
**सेवासाधनरूपेण तं ददाति सुनिश्चितम् ॥१७ ॥**

वृद्ध ब्राह्मण ने समझाया-भिक्षा आदि का असत् आकर्षण छोड़ दो, ब्राह्मण के लिये यह उचित नहीं । ब्राह्मण तो समाज से जितने अनुदान लेता है, उससे अनेक गुने अनुदान ज्ञान-दान तथा सेवा-साधना के रूप में समाज को देता रहता है ।

यहाँ भिक्षा-व्यवसाय की भर्त्सना करते हुए कुछ दृष्टांत सुनाये जा सकते हैं ।

अपने निर्वाह के लिये भिक्षा माँगना जघन्य पाप है । जिसमें जरा भी स्वाभिमान शेष है, वह ऐसा नहीं कर सकता । लोक मंगल के लिये स्वयं अपने

अनुदान देना और दूसरों से दिलाने का तो औचित्य है, पर भिक्षा-व्यवसाय तो मनुष्यता पर कलंक है।

१- ऋषि लोग एकांत स्थान में रहकर तप और शोध कार्य किया करते थे। वहाँ वे अपने आहार की व्यवस्था कृषि अथवा कंदमूल फलों से कर लेते थे। माँगते नहीं थे। कणाद और पिप्पलाद ऋषि तो अन्य व्यवस्था के अभाव में बिखरे हुए अन्न के दाने एकत्रित करके और पीपल के बीजों को खाकर ही रह जाते थे, पर समाज पर भार नहीं बनते थे।

२- द्रोणाचार्य ब्राह्मण थे। राजा द्रुपद उनसे सहायता का वादा करके मुकर गये, इस कारण उन्हें कुछ समय तक बड़े अभाव में रहना पड़ा। बच्चों को दूध की जगह चावल पीसकर पिलाये, पर भीख नहीं माँगी। भीष्म पितामह के आग्रह पर राजकुमारों को शिक्षा देने के बदले ही कुछ सहायता लेना स्वीकार किया।

३- भीख माँगना ओछा कार्य है, स्वयं भगवान को भी बलि से कुछ माँगना पड़ा, तो वे वामन (छोटे) बनकर गये। यह भिक्षावृत्ति के छोटेपन का ही आलंकारिक प्रदर्शन है।

४- सुदामा से उनकी पत्नी ने कहा कि अभाव दूर करने के लिए किसी से कुछ माँग क्यों नहीं लेते। सुदामा ने उत्तर दिया "ब्राह्मण का काम समाज को देना है, उससे लेना नहीं। ब्राह्मण की योग्यता का लाभ समाज अधिक लेना चाहे, तो स्वयं ही उसका सहयोग करे- ऐसी मर्यादा है।" वे कृष्ण से मिलने गये, उनके कार्य का महत्त्व समझकर कृष्ण ने उन्हें प्रचुर सहायता दी, परन्तु उन्होंने वहाँ भी माँगा कुछ नहीं।

**त्यक्त्वा दैन्यं भयं चापि ह्यालस्यं चाकर्मण्यताम्।**
**कुरुष्व जाग्रतं स्वीयं ब्रह्मतेजश्च विप्र ! त्वम् ॥१८॥**

हे विप्र ! तुम दीनता, भय, आलस्य और अकर्मण्यता छोड़कर अपने ब्रह्म तेज को जागृत करने के लिए साधना करो।

**विद्याध्येता च स्वाध्यायी भव धर्मं प्रचारय।**
**गुणकर्मस्वभावानां दृष्ट्याऽदर्शो भवेत्तथा ॥१९॥**

विद्या की वृद्धि करो, स्वाध्याय करो और धर्म का प्रचार करो। तुम्हें स्वयं गुण, कर्म और स्वभाव की दृष्टि से दूसरों के सामने उच्च आदर्श उपस्थित करना चाहिए।

**गत्वा प्रतिगृहं सर्वं जनचेतसि धार्मिकीम्।**
**जागृतिं कुरु सर्वत्र कर्त्तव्यञ्च तवास्ति तत् ॥२०॥**

तुम्हारा प्रधान कर्त्तव्य है कि घर-घर जाकर जन-जन में सच्ची धार्मिक चेतना जागृत करो।

**भगवतो वचः श्रुत्वा वृद्धब्राह्मणरूपिणः।**
**कृतः सुधारो दीनेन ह्याचारं परिवृत्य च ॥२१॥**

वृद्ध ब्राह्मण के रूप में बोलने वाले भगवान का आदेश मानकर सदानन्द ने दीनता छोड़कर अपने आचरण को पूरी तरह सुधार लिया।

**तेन जाता प्रतिष्ठा वै तेजस्वित्वमयापयत्।**
**श्रद्धया सहयोगेन, सर्वेऽभावा ह्यक्षीयत ॥२२॥**

सत्यव्रत के पालन से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी, समाज के श्रद्धायुक्त सहयोग से उसके सारे अभाव मिट गये और वह तेजस्वी जीवन जीने लगा।

**स विप्रो हि ततः सत्यनारायणव्रतस्य च।**
**ख्यापयितुं महत्त्वं तु धर्मानुष्ठानरूपिणम् ॥२३॥**

तब वह सत्य धर्म की महत्ता दर्शाने के लिए धर्म-आयोजन भी करने लगा।

**प्राप्तः काष्ठस्य विक्रेता महत्तां दृष्टवान् स्वयम्।**
**लालायितोऽभवद् ज्ञातुं सत्यस्य शुभदं व्रतम् ॥२४॥**

ऐसे ही एक आयोजन के अवसर पर एक लकड़हारा वहाँ पहुँचा।

आयोजन समाप्त होने पर लकड़हारे ने सदानन्द से सत्यनारायणव्रत के नियम बताने की प्रार्थना की।

सदानन्द उवाच -

**श्रमस्य महती सम्पत् वर्तते तव सन्निधौ।**
**सम्मान्यो हि श्रमो नित्यं कार्यश्च लग्नचेतसा ॥२५॥**

सदानन्द ने कहा - हे भाई ! तुम अपने आपको दीन मत समझो, तुम्हारे पास तो श्रम की महान् पूँजी है। तुम श्रम के प्रति सम्मान के भाव जागृत करो, पूरे मनोयोग से काम करो।

(श्रम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए दृष्टांत प्रस्तुत किये जा सकते हैं।)

## उदाहरण

परिश्रम मनुष्य की बड़ी भारी पूँजी है। ज्ञानार्जन, धनार्जन सभी में श्रम करना पड़ता है। श्रम से बचने से अथवा श्रम के प्रति सम्मान का भाव न रखने से मनुष्य दीन-दरिद्र रहता है।

१- राजा जनक श्रम की प्रतिष्ठा के प्रबल समर्थक थे। राजकार्य तथा ज्ञान-प्रसार की व्यस्तता में भी श्रमपूर्वक अपने लिये स्वयं अन्न उपार्जन करते थे। इसलिये उनकी प्रतिष्ठा बढ़- चढ़कर रही।

२- एक बार अनावृष्टि का योग पड़ा। लोगों ने कहा कि १२ वर्ष तक जल नहीं बरसेगा; किन्तु एक किसान फावड़ा लेकर खेत पर नित्य काम करता रहा। एक बार बादल वहाँ से निकले और किसान से पूछा कि जब पानी बरसना ही नहीं है, तो बेकार मेहनत क्यों कर रहा है ? किसान ने उत्तर दिया - "इसीलिये कि १२ वर्ष में मेरा श्रम का अभ्यास न छूट जाय।" बादलों को बात ठीक लगी और उन्होंने कहा कि हमारा भी बरसने का अभ्यास न छूट जाय ? इसीलिये वे बरसने लगे। वस्तुत: वे किसान की श्रम निष्ठा का ईनाम उसे दे गये।

३- एक व्यक्ति सन्त सुकरात के पास बार-बार सम्पन्नता का आशीर्वाद

लेने जाता, पर वे उसे बहला कर टाल देते । एक बार सन्त ने देखा वह व्यक्ति फल बेचने के लिये ले जा रहा है, तो स्वयं जाकर उसे सम्पन्नता का आशीर्वाद दिया । उसने पूछा कि बार-बार आग्रह पर भी पहले आशीर्वाद नहीं दिया, पर अब स्वयं देने क्यों आये ? सन्त ने कहा परिश्रमहीन व्यक्ति को आशीर्वाद भी फलित नहीं होता । अब तुम श्रम करने लगे, अतः स्वयं आशीर्वाद दिया ।

**धारितं च व्रतं तेन काष्ठविक्रयिणा ततः ।**
**गुणकर्मस्वभावाश्च सत्यानुसृतिशोधिताः ॥२६ ॥**

वह लकड़ी बेचने वाला भी लकड़ी बेचने के साथ सत्यव्रत का पालन करने लगा और उसने अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सत्यव्रत के अनुरूप संशोधन कर लिया ।

**आसीत्पूर्वं तु तस्यापि चात्यल्पः काष्ठविक्रयः ।**
**समृद्धोऽसौ व्रतेनैव कृतः सत्यप्रभोः खलु ॥२७ ॥**

पहले उस लकड़हारे की बहुत कम बिक्री होती थी, सत्यव्रत के आलम्बन लेने से उसका कारोबार बढ़ा तथा वह धनी हो गया ।

(ईमानदारी के कारण लोगों का विश्वासपात्र बन जाने से उसका कारोबार बढ़ा-ऐसी टिप्पणी करते हुए ईमानदारी के समर्थन में उदाहरण दें ।)

## उदाहरण

१- बुद्ध के दो शिष्य पद्म और विधु-श्रावस्ती में रहते थे । दोनों धर्म प्रचार के लिये अनुदान दिया करते थे । विधु कुछ समय तक बढ़- चढ़कर अनुदान देता रहा, पर फिर उसका क्रम रुक गया । पद्म के अनुदान क्रमशः बढ़ते चले गये । बुद्ध ने कारण की जाँच की, तो पता लगा कि विधु ने अपने उत्पादन में चालाकी करके अधिक धन कमाना प्रारम्भ कर दिया था । प्रारम्भ में तो लाभ अधिक मिला, पर फिर प्रतिष्ठा गिर गयी और व्यवसाय बिगड़ गया । बुद्ध दुखी हुए और विधु को उसका धन अनुचित कहकर लौटा दिया । विधु बोला - प्रभु यह सब श्रम से कमाया था, अनुचित नहीं है । बुद्ध हँसे और बोले -

वत्स श्रम तो अंगुलिमाल भी कम नहीं करता था, पर नैतिकता भी तो चाहिए। ईमानदारी न हो, तो श्रम उपार्जित धन भी अनैतिक है। फिर तू स्वयं मुहताज हो गया है, अपना धन ले और निर्वाह कर। विधु लज्जित हुआ और पुनः ईमानदारी से श्रम करने लगा।

वर्तमान समय के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। लोग पैकबन्द मँहगा शहद खरीद लेते हैं, घर आकर देने वालों से सस्ता नहीं लेते। श्रम घर जाकर बेचने वालों को अधिक पड़ता है। जिनकी ईमानदारी पर विश्वास है, उन फर्मों का माल घर बैठे बिक जाता है। शेष चक्कर काटते रहते हैं। उदाहरण - बाटा, स्विस कम्पनी आदि।

**विप्रः काष्ठस्य विक्रेता समृद्धोऽभवत्पूर्णतः।**
**सद्गतिं सुखशांतिं च सम्प्राप्य हि व्रतेन च ॥२८॥**

ब्राह्मण और लकड़हारे ने सत्यव्रत के प्रभाव से सुख, शान्ति और सद्गति प्राप्त करके जीवन सार्थक बना लिया।

**एवं सत्यव्रतं धृत्वा श्रद्धया चेच्च स्वीकृतिः।**
**तथान्येऽपि स्वकल्याणं कर्तुंशक्ता भवन्ति वै ॥२९॥**

इस प्रकार अन्य सब मनुष्य भी सत्यव्रत को धारण करके निश्चय रूप से अपना कल्याण कर सकते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

॥इति श्री सत्यनाराणव्रतकथायां द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः॥

# तृतीयो ऽध्यायः

सूत उवाच -

**पुनरग्रे प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।**
**पुरा चोल्कामुखो नाम नृपश्चासीन्महामतिः ॥३० ॥**

सूतजी ने कहा - हे श्रेष्ठ मुनिगण ! अब आगे की कथा कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनिये । प्राचीन काल में उल्कामुख नाम का एक बुद्धिमान राजा था । वह सत्यव्रती था और सत्यव्रत के प्रचारार्थ सार्वजनिक आयोजन किया करता था ।

**भद्रशीला नदी तीरे शुभायोजन ईदृशे ।**
**सम्मिलितोऽभवत्साधुः नामा व्यापारव्यावृतः ॥३१ ॥**

भद्रशीला नदी के तट पर एक ऐसे ही आयोजन में साधु नामक व्यापारी भी सम्मिलित हुआ और उस आयोजन से प्रभावित होकर राजा से व्रत के सम्बन्ध में विशेष जानकारी माँगी ।

राजा उवाच -

**वैश्य धर्मः समाजस्य पदार्थानां व्यवस्थितिम् ।**
**अपेक्षिताँस्तु मूल्येन करोत्युत्पादनस्य च ॥३२ ॥**

राजा बोले - वैश्य का धर्म समाज की आवश्यकतानुसार शुद्ध वस्तुओं के उत्पादन और उनके उचित मूल्य पर वितरण की व्यवस्था करना है ।

## उदाहरण

उत्पादन का अर्थ है, कम उपयोगी को अधिक उपयोगी बनाना । उत्पादन खेतों और कारखानों में होता है, दुकानों में तो वितरण होता है । बीज एक से अनेक होते हैं, सामान्य धातु के कीमती उपकरण बनाना भी उत्पादन है । लोगों में उत्पादन की क्षमता होने से समृद्धि रहती है । उदाहरणार्थ -

१- गाय घास खाकर दूध देती है । उसमें उत्पादन की क्षमता होने से ही उसे उपयोगी एवं पूजनीय माना जाता है ।

२- बीज स्वयं को गलाकर अनेक दानों में बदल देता है । जो अपने स्वरूप का मोह करते हैं, वे उत्पादक सिद्ध नहीं हो पाते ।

३- बादल धरती से कहने लगे, तू पगली है । तुझे लोग सड़े-गले पदार्थ देते हैं और अन्न-फल ले लेते हैं । तू भी उनके बदले में कीमती चीजें क्यों नही माँगती ? पृथ्वी बोली - भाई जितनी कीमत की चीज दूँ, उतनी कीमत की लूँ, तो मैं उत्पादक नहीं रह जाऊँगी, फिर मुझे लोग माता नहीं, वैश्या कहेंगे । मैं तो चाहती हूँ, मैं और भी कम लेकर और भी अधिक दूँ । मेरी यह क्षमता बढ़ती ही रहे और मेरे बच्चे मुझसे प्रेरणा लेकर प्रसन्न रहें ।

वितरण का अर्थ है - जहाँ उत्पादन है, वहाँ से लेकर जहाँ आवश्यकता है, वहाँ वस्तु को पहुँचाना । संसार में आवश्यकता के अनुसार वस्तुएँ तो हैं, पर वितरण व्यवस्था ठीक न होने से ही कहीं अपव्यय और कहीं अभाव की स्थिति पैदा हो जाती है ।

## उदाहरण

१- शिष्य ने प्रश्न किया "शरीर में पेट को वैश्य की संज्ञा क्यों दी गयी ?" गुरु ने समाधान किया, शरीर को पोषण की आवश्यकता होती है । पोषण खाद्य पदार्थों से प्राप्त होता है; परन्तु उस रूप में शरीर के हर अंग में वह पहुँच नहीं सकते, पेट उन्हें पचाकर रस का उत्पादन करता है तथा आवश्कतानुसार शरीर के सभी भागों में भेज देता है । स्वयं भी आवश्यकता के अनुपात से ही रस लेता है, अधिक रस नहीं लेता । समाज में वैश्य का भी यही कर्म है ।

२- पृथ्वी पर भयंकर सूखा पड़ गया । वायुदेव ब्रह्मा से बोले - प्रभु आपने पृथ्वी से पानी क्यों हटा लिया ? ब्रह्मा ने कहा "वत्स" पृथ्वी पर जल अभी भी उतना ही है । समुद में तथा पहाड़ों पर, झीलों और हिम रूप में जमा है । पृथ्वीवासियों ने प्रकृति का सन्तुलन बिगाड़ दिया । अतः वितरण व्यवस्था बिगड़ गयी है । तुम मदद करो, बादलों को जल देकर अपने साथ आवश्यकता

के स्थानों तक पहुँचाकर बरसाओ, जल की कमी नहीं पड़ेगी ।

३- भेड़ की ऊन कट गयी, रीछ हँसा बोला -"पगली अब सर्दियों में ठण्डक से मरेगी ।" भेड़ बोली चिन्ता मत करो भैया, मैं तो भगवान की दी सम्पदा के वितरण में विश्वास करती हूँ । सर्दियों तक मुझे तो पुनः ऊन मिल जायेगी, पर तुम्हें मनुष्य का प्यार और सम्मान कभी नहीं मिल सकेगा ।

४- पहाड़ से नदी बह उठी, शिलायें बोलीं, आगे मत जा कच्ची धरती में सूखकर तेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा, पर वह शान्त भाव से बढ़ती चली गयी, उसे तो प्यासों तक जल पहुँचाना था । वह सूखी नहीं, एक-एक करके धारायें मिलती गयीं और वह विशाल होती चली गयी । वितरण से वह बढ़ी, घटी नहीं ।

**वैश्यः स्वीय समाजस्य संवर्ध्य निजकर्मभिः ।**
**शान्तिं सौख्यं यशोभागी जायते जगतीतले ॥३३ ॥**

सत्य धर्म पालन करने वाला वैश्य अपनी तथा समाज की सम्पन्नता एवं सुख-शान्ति बढ़ाते हुए जीवन में प्रचुर यश का भागीदार बनता है ।

व्रत की प्रेरणा पाकर और विधि-विधान समझकर वैश्य अपने घर पहुँचा ।

**पत्नीं लीलावतीं सर्वं वृत्तं सोऽकथयत्ततः ।**
**सापि व्रतं च सत्यस्य श्रद्धयाऽपालयत्तथा ॥३४ ॥**

उस वैश्य ने अपनी पत्नी लीलावती को सारा वृतान्त सुनाया और वह भी सत्य धर्म का पालन श्रद्धापूर्वक करने लगी ।

(पत्नी को पति द्वारा किये जाने वाले अच्छे कार्यों में श्रद्धा और प्रसन्नतापूर्वक सहयोग करना चाहिये । दाम्पत्य की इस मर्यादा का महत्व बताते हुए समर्थन में उदाहरण प्रस्तुत करें ।)

## उदाहरण

१- भगवान राम ने देवताओं के कार्य के लिए वन जाना स्वीकार किया ।

सीता ने भी उनका साथ दिया । राज्य सुख त्याग कर वन में संकट प्रसन्नता से स्वीकार किये ।

२- पण्डित वाचस्पति मिश्र वेदान्त शास्त्र पर दुर्लभ ग्रन्थ लिख रहे थे । कार्य में इतने तल्लीन थे कि अपने शरीर तथा आस-पास की सुधि भी नहीं थी । उनकी पत्नी वर्षों तक चुपचाप उनके लिये समय पर भोजन, वस्त्र, प्रकाश आदि की व्यवस्था करती रहीं । लोगों ने कहा -"तुम्हें इस प्रकार कष्ट सहने की आवश्यकता नहीं । पण्डित से कहो कि गृहस्थ के कर्त्तव्य पूरे करें और तुम्हारी देखभाल करें ।" पत्नी ने उत्तर दिया "वे तो सारे समाज के लिये अद्‌भुत अनुदान दे रहें हैं । अपने स्वार्थवश थोड़े ही बैठे हैं । अर्धांगिनी के नाते उनका आधा काम मुझे भी करना चाहिये । उतनी मेरी योग्यता नहीं, पर उनके कार्य में विघ्न न डालूँ , छोटी-छोटी सहायता करती रहूँ, इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है । ग्रन्थ पूरा होने पर, पण्डित वाचस्पति ने उसका नाम पत्नी के नाम पर 'भामती' ही रखा ।

३- याज्ञवल्क्य ऋषि संन्यास की तैयारी करने लगे । पत्नियों से कहा कि अपनी आवश्यकता बता दें, ताकि उसकी पूर्ति करके वे मुक्त हों । मैत्रेयी ने कहा आप जिस महान् उद्देश्य के लिये यह सब छोड़ रहे हैं, उस के लिये मैं भी आपका सहयोग करूँगी, मुझे कुछ नहीं चाहिये और वे ऋषि के साथ ही हो लीं ।

४- अत्रि ऋषि चित्रकूट क्षेत्र में तप तथा सेवा-साधना में संलग्न थे । वहाँ पानी की कमी पड़ जाया करती थी । उनकी पत्नी अनुसूया ने आवश्यकता समझी और प्रचण्ड तप द्वारा गंगाजी को प्रसन्न कर लिया । फलस्वरूप मंदाकिनी की धारा वहाँ बह उठी । ऋषि का कार्य सुगमता से चलने लगा ।

**भार्यायाः वर्धनं साधुर्ज्ञानस्य कृतवान् वणिक् ।**
**सुस्थितिः परिवारस्य समृद्धिश्चाभवत्खलु ॥३५ ॥**

सत्यव्रती वैश्य धर्मपत्नी का ज्ञान और योग्यता भी बढ़ाने लगा । फलस्वरूप उसके घर में व्यवस्था - सम्पन्नता तेजी से बढ़ने लगी । उन दोनों

ने अपनी आय का एक अंश सत् कार्यों में नियमित रूप से लगाते रहने का संकल्प किया।

(यहाँ सम्पन्नता के सदुपयोग पर बल देकर उसके पक्ष में उदाहरण प्रस्तुत करें।)

## उदाहरण

मनुष्य की बुद्धिमानी की परीक्षा धन कमा लेने में नहीं, उसके सदुपयोग में है। जिन्होंने सही अवसर पर सही ढंग से धन खर्च किया, वे धन्य हो गये।

१- विश्वामित्र जी को आवश्यकता पड़ गयी, तो राजा हरिश्चन्द्र ने अपना सारा राज्य तो दे ही दिया, स्वयं तथा स्त्री बच्चे को बेचकर भी उसकी पूर्ति की।

२- भगवान बुद्ध का संदेश समाज तक पहुँचाने के लिये परिव्राजकों के भरण-पोषण के लिये सम्राट् अशोक एवं हर्षवर्धन ने सारे राज्य की सम्पत्ति कई बार लगा दी।

३- राष्ट्र हित में महाराणा प्रताप की आवश्यकता पूरी करने के लिए भामाशाह ने घर की एक-एक पाई उन्हें सौंप दी।

४- महात्मा गाँधी के कार्य के लिये जमनालाल बजाज ने अपनी सारी सम्पत्ति अर्पित कर दी।

* वैश्य दम्पति अपने मन में सन्तानोत्पदान की इच्छा अनुभव करने लगे। ऐसी इच्छा मन में उठने पर -

**प्राप्तः स्वप्ने हि निर्देशः कन्यायाः कामनां प्रति।**
**सौभाग्यादरयोश्चैषा चिह्नं सूनोरपेक्षया ॥३६॥**

उन्हें स्वप्न में निर्देश मिला कि वे पुत्र की अपेक्षा पुत्री प्राप्ति की कामना करें, क्योंकि कन्या सौभाग्य और आदर का चिह्न है।

(पुत्र से पुत्री का होना श्रेष्ठ है इस तथ्य का प्रतिपादन करें तथा उदाहरण प्रस्तुत करें।)

## उदाहरण

शास्त्र का वचन है-

१- **"दश पुत्र समा कन्या यस्या: शीलवती सुता"** अर्थात् सुलक्षिणी कन्या दस पुत्रों के समान होती है ।

२- सावित्री राजा अश्वपति की इकलौती कन्या थी । उसने सांसारिक वैभव सम्पन्न नहीं, गुण एवं चरित्र सम्पन्न युवक सत्यवान से विवाह किया तथा अपने चरित्र बल से यमराज को भी नतमस्तक करके पति को छुड़ा लिया । पिता का भी नाम अमर कर दिया ।

३- सीता से मिलने जब जनक चित्रकूट गये, तब सीता को तापसी के वेष में देखकर गद्गद् हो गये । उनके मुख से निकल पड़ा - बेटी तूने दोनों कुलों का नाम ऊँचाकर दिया । पुत्र एक ही कुल का नाम ऊँचा कर पाता है ।

४- सुकन्या से भूलवश च्यवन ऋषि की आँखे फूट गयीं । उसने राजपुत्री होकर भी जीवन भर उनकी सेवा का उत्तरदायित्व सँभाल लिया और अपनी साधना और बुद्धिमानी से उन्हें पुन: जवान बना दिया ।

**निर्देशं दम्पती प्राप्य ह्याचारं प्रतिपालयन् ।**
**सुसंस्कारैर्हि सम्पन्ना कन्या चोत्पादितस्तदा ॥३७ ॥**

उन्होंने प्राप्त निर्देशानुसार नियमित जीवन क्रम अपनाकर एक सुसंस्कारवान् कन्या को जन्म दिया ।

**यदा वयस्का सा जाता कुलीनपरिवारिणा ।**
**यूना गुणवता साकं सुशीलेन विवाहिता ॥३८ ॥**

कन्या कलावती के वयस्क और सुशिक्षित हो जाने पर उन्होंने उसका विवाह एक कुलीन परिवार के गुणवान् युवक के साथ सम्पन्न कर दिया ।

**पुत्रवद् वणिजा तेन युवकं शिक्षितस्तदा ।**
**स्वहितैः सह क्रेतुर्वत् स चिन्तयति वै हितम् ।**
**यस्तं रक्षत्यवहितो व्यापारी सत्य एव सः ॥३९ ॥**

वैश्य ने उस होनहार युवक को अपने पुत्र की तरह मानकर शिक्षित किया। जो वैश्य अपने हित के साथ खरीददार के हितों की भी रक्षा करता है, वही सच्चें अर्थों में व्यापारी कहलाता है।

* साधु वैश्य अपने जामात्र सहित व्यापार तो बढ़ाने लगा, किन्तु अपनी आय का एक अंश सत् कार्यों के लिये दान करते रहने के अपने संकल्प को भूल गया।

**बहुशो बोधितः पत्न्या सत्कार्येऽर्थे तु सद्व्ययः।**
**तेन चोपेक्षितं सर्वं विस्मृतं कल्पितं पुरा ॥४०॥**

उन दोनों ने बहुत बार पत्नियों द्वारा स्मरण दिलाने पर भी अपनी आय का एक अंश सत्कार्यों में लगाते रहने के संकल्प की उपेक्षा कर दी।

(पति को अनुचित कार्य से रोकने के पत्नी के उत्तरदायित्व पर प्रकाश डालें। उदाहरण नीचे दिये गये हैं।)

## उदाहरण

१- रावण बड़ा क्रोधी था तथा उसका भयंकर आतंक सब पर था; किन्तु मन्दोदरी ने उसके हर अनुचित कदम पर उसे सावधान किया तथा रोका। रावण ने उस पर शत्रु की प्रशंसा करने का आक्षेप लगाया, फिर भी वह अविचलित भाव से सत्य का आग्रह करती ही रही। भगवान ने उसकी भावना के कारण स्वयं उसका सम्मान किया।

२- राजा यशवन्त सिंह एक बार युद्ध से पीठ दिखाकर अपने साथियों को छोड़कर किले में संरक्षण के लिये पहुँच गये। रानी किले की सुरक्षा सँभाल रहीं थीं। उन्होंने राजा को पहचानने से इनकार कर दिया। दरवाजा नहीं खोला और कहा "मैं यशवन्त सिंह को भली प्रकार जानती हूँ, वे अपने सहयोगियों को छोड़कर अकेले अपनी सुरक्षा के लिये कभी नहीं भाग सकते।" राजा को अपने कर्त्तव्य का ध्यान आया और वे फिर शत्रु को परास्त करके ही लौटे।

३- तुलसीदास रत्नावली के मोह में अपनी प्रतिज्ञा का ठीक उपयोग नहीं

कर रहे थे। रत्नावली ने उन्हें समझाया। पर जब न माने, तो ऐसे चुभते हुए वाक्य कहे कि उनके मोह का नशा उतर ही गया, तब प्रतिभा को सही दिशा मिल गयी।

**संति गार्हस्थ्यनिर्वृत्ते वानप्रस्थस्य जीवनम्।**
**जामात्रा च सहान्यत्र व्यापारार्थं तु प्रस्थितः ॥४१॥**

नियम तो यह है कि मनुष्य अपने गृहस्थ सम्बन्धी उत्तरदायित्वों से निवृत्त होकर वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश करे; लेकिन वह साधु वैश्य पैसे के लोभ में अपने जमाई को साथ लेकर व्यापार के लिये चल पड़ा।

**त्यागाद्धर्मस्य कार्याणां मानवे कुप्यतीश्वरः।**
**दुःखमनुभवत्येव सदा तत्कोपभाजनः ॥४२॥**

स्वधर्म के त्याग से भगवान रुष्ट होते हैं तथा उनके क्रोध के कारण मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों में फँस जाता है।

**साधु वैश्यः सत्यधर्मं विस्मृत्य ह्याविचारतः।**
**उचिताऽनुचितं चैव तद्वृत्योपार्जयेद्धनम् ॥४३॥**

कर्तव्य भुला देने से साधु वैश्य की सद्बुद्धि क्षीण हो गयी तथा वह लोभवश उचित-अनुचित का विचार किए बिना अनीतिपूर्वक धन कमाने लगा।

**रत्नसार पुरस्यास्य सत्यनिष्ठप्रजाजनैः।**
**राज्याधिकारिभिः काराबद्धो जाते नृपश्च सः ॥४४॥**

इस अपराध के कारण रत्नसारपुर के सत्यनिष्ठ प्रजाजनों ने उसे राज कर्मचारियों द्वारा बन्दी बनवाकर राजाज्ञा से जेल भिजवा दिया।

(राज्य में अनीति न पनपे, इसके लिये प्रजाजनों द्वारा अनीति निवारण में सहयोग तथा संघर्ष की आवश्यकता प्रतिपादित की जाय।)

## उदाहरण

१- राजा पुरूरवा का पुत्र प्रद्योत राजमद के कारण उचित-अनुचित भूल गया। उसके साथी-मित्र उसका बल पाकर नगर में मनमानी करने लगे। पजाजनों ने राजकुमार को समझाने का प्रयास किया। वह न माना तो नगर के वीरों ने राजकुमार के मित्रों को कैद कर लिया। राजकुमार उन्हें छुड़ाने पहुँचे, तो उन्हें भी साथ में लेकर राज दरबार में उपस्थित कर दिया। राजा को पुत्र की धृष्टता पर क्रोध आया, उसे दो वर्ष के लिये राज्य से निष्कासित कर दिया तथा सिद्धान्तनिष्ठ नागरिकों को पारितोषिक देकर अभिनन्दित किया।

२- उज्जयिनी का श्रेष्ठ "गोपद" अनीति से धन कमाने लगा। नागरिकों ने राज्याधिकारियों से शिकायत की, तो गोपद के विरुद्ध प्रमाण नहीं पा सके। प्रजाजनों को पता लगा कि गोपद अपने नौकरों को धन का लालच देकर अनीति के प्रमाण दबा देता है। वह बात श्रेष्ठ "विपुल" को बतायी गयी। उन्होनें गोपद के सेवकों को अधिक धन देकर सारे प्रमाण खुलवा दिये और फिन उन लालची सेवकों को भी दण्डित करा दिया।

३- राजा कुम्भवर्मा को शराब की लत पड़ गयी। धीरे-धीरे उनमें और भी दोष पनप गये। राजा स्वभाव से चिड़चिड़ा तथा चापलूसी पसन्द हो गया। इस दोष के कारण निष्पक्ष न्याय सम्भव न रहा और राज्य में अनीति - आचरण बढ़ने लगे। जनता को चिन्ता हुई और सबने मिलकर मन्त्रि परिषद् को उनके उत्तरदायित्व का स्मरण दिलाया। प्रधानमंत्री ने राजा को वस्तुस्थिति बतायी और मन्त्रि-परिषद् ने व्यवस्था सँभाल ली। राजा लाल-पीले हुए, पर जन समर्थन के आगे कुछ चल न सकी। युवराज शम्भुवर्मा को गुरुकुल का समय पूरा होते ही बुलाकर उन्हें अभिषेक करा दिया गया। कुम्भवर्मा के लिये राज्य से दूर सामान्य नागरिक की तरह जीवनयापन की व्यवस्था कर दी गयी।

**अर्द्धांगिन्यपि कर्त्तव्यं कर्तुं स नानुरोधितः।**
**सापि तस्माद्भगवतो जाता च क्रोधभाजना ॥४५॥**

उसकी धर्मपत्नी ने भी पति से धर्म पालन कराने के अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं किया, इससे वह भी भगवान सत्यनारायण के क्रोध का भाजन बनी ।

**सर्वा सम्पद् गृहान्नूनं विलीना तस्य तत्क्षणात् ।**
**ताभ्यामितश्च तत्रापि ज्ञातं च दु:खकारणम् ।**
**कर्त्तव्यस्य त्यागो हि चैकमेवास्ति केवलम् ॥४६ ॥**

इससे उनके घर की सारी संचित धनराशि विलीन हो गयी । इस प्रकार कष्ट पाने से वह साधु नामक वैश्य और उसकी पत्नी ने अपने मन में समझ लिया कि हमारी यह दुरवस्था धर्म-कर्तव्य से विमुख हो जाने के कारण ही हुई है ।

* साधु वैश्य ने राजा चन्द्रकेतु से अपनी भूल की क्षमा माँगी और सदाचार की मर्यादा में रहकर व्यापार करने का आश्वासन दिया ।

**अनीतिर्धनिनां सर्वान् कुरुतेऽनीतिकारिण: ।**
**व्यवस्था च समाजस्य भ्रष्टा भवति सर्वदा ॥४७ ॥**

राजा चन्द्रकेतु ने कहा - जब विभूतिवान् धनी व्यक्ति अनीति का मार्ग पकड़ लेते हैं, तो जन सामान्य द्वारा भी वही राह अपना ली जाती है और समाज भ्रष्ट हो जाता है ।

**अन्यायोपार्जनं त्यक्त्वा स्वीयं मूलधनेन च ।**
**विधातुं च स्वव्यापारं समर्था: सन्तु वै तथा ॥४८ ॥**

हे वैश्य ! तुमने जो अनीतिपूर्वक धन कमाया है, उसको छोड़कर अपनी मूल सम्पत्ति से तुम पुन: व्यापार प्रारम्भ कर सकते हो ।

**अथैवं कृत्वा वैश्य कृपया सत्प्रभोस्तदा ।**
**विपुलोपार्जनं तस्य वित्तस्य चाप्यजायत ॥४९ ॥**

वैश्य ने राजा के कथनानुसार पुन: सत्यव्रती बनकर व्यापार किया तथा भगवान सत्यनारायण की कृपा से विपुल धन अर्जित कर लिया ।

**कलावत्यपि विज्ञाता लीलावत्या सह पुनः ।**
**हित्वा पूर्वं विलासेन जीवनं च प्रधानता ॥५० ॥**
**सेवासद्भावयोर्दत्ता कर्मठत्वस्य च ध्रुवम् ।**
**प्राप्तोऽधिकांशतोत्वर्थो जाता सत्यप्रभोः कृपा ॥५१ ॥**

उधर लीलावती और कलावती ने भी अपनी भूल समझी और उन्होंने पहले वाला विलासिता से भरा जीवन क्रम छोड़कर कर्मठता एवं सेवा-सद्भावना को जीवन में प्रधानता दी । भगवान सत्यनारायण की कृपा हुई और उनका अधिकांश धन पुनः प्राप्त हो गया । उनका समय पुनः सुख से बीतने लगा ।

(विलासिता का खडंन तथा सादगी का समर्थन करते हुए कुछ उदाहरणों से बात की पुष्टि करें ।)

## उदाहरण

सादगी मनुष्यता का गौरव है । जितने भी संत और महापुरुष हुए, वे सब सादगी से रहते थे । विलासिता बौद्धिक बचकानेपन अथवा हृदयहीनता की प्रतीक है ।

१- बुद्ध से एक नागरिक ने पूछा "भगवन् आपके अनुयायियों में शारीरिक साज-सज्जा की आकांक्षा क्यों नहीं उठती ? तथागत बोले हे श्रेष्ठ, जब अतंःकरण सजा लिया जाता है, तो शरीर की सजावट निरर्थक लगने लगती है । शरीर पर तो निर्वाह मात्र के लिये जितना आवश्यक है, उतना ही ध्यान जाता है ।

२- रघुनाथ शास्त्री को राजा देवसिंह बहुत मानते थे । एक बार महारानी ने उनकी धर्मपत्नी को राजमहल बुलाया । वहाँ उन्हें कीमती वस्त्राभूषण पहनाकर पालकी में बिठाकर भेजा । शास्त्री जी ने उन्हें देख कर कहारों से कहा "आप गलत जगह आ गये । " और द्वार बन्द कर लिया । उनकी पत्नी वापिस राजमहल गयीं । वहाँ सादा धोती पहनकर पैदल ही घर लौटीं, तो शास्त्री जी ने द्वार खोल दिया । कहा "देवी हम आभूषण के आर्कषण में पड़

जायेंगे, तो जन साधारण का क्या होगा ?"

३- एक सम्पन्न बुढ़िया को यमदूत ले गये । उसे स्वर्ग का अधिकारी माना गया, पर उसने एक वर्ष का समय यह कहकर माँगा कि मुझे अभी बहुत कुछ करना है । एक वर्ष तक वह शान-शौकत से रही । समय पर यमदूत उसे पुनः ले गये, पर अब उसे स्वर्ग का अधिकारी नहीं माना गया । बताया गया कि उसने पिछली अवधि में सादगी से रहकर जो पुण्य कमाया था, वह एक वर्ष विलासितापूर्ण जीवन के कारण समाप्त हो गया ।

सत्यसाधक सम्पत्ति को ईश्वर की धरोहर मानकर उसे व्यसन-विलास में नहीं, सत्कार्यों में खर्च करते और भगवान के प्रेम के अधिकारी बनते हैं ।

॥इति श्री सत्यनारायणव्रतकथायां तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

# चतुर्थो ऽध्यायः

सूत उवाच -

**प्रचुर धनमादाय स्वर्णालंकारत्नवत्।**

**नौकयासौ स्वकं साधुः पुरं गन्तुमुपाक्रमत् ॥५२॥**

सूतजी कहने लगे - अब वह साधु वैश्य बहुत-सा सोना, जवाहरात और धन लेकर नाव द्वारा अपने नगर को चल दिया।

**साधुः परीक्षितः सत्यनिष्ठायां यत्र स वणिक्।**

**प्रभुणा तर्हि वयसा वृद्धर्षित्वमुपेत्य वै ॥५३॥**

भगवान ने एक गुरुकुल संचालन करने वाले ऋषि के रूप में साधु वैश्य के पास पहुँचकर उसकी सत्य निष्ठा की परीक्षा ली ।

ऋषि उवाच -

**धनं सहायतार्थं तु स्वीयं सामर्थ्यश्रद्धया।**

**प्रदातुं शक्यते चात्र भवते यदि रोचते ॥५४॥**

ऋषि साधु वैश्य से बोले - आप चाहें तो अपनी सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार इस आश्रम के कार्यों के संचालन हेतु स्वेच्छा से सहयोग दे सकते हैं।

(यहां श्रेष्ठ कार्यों में यथासाध्य सहयोग करने के उत्तरदायित्व पर बल देकर दृष्टान्तों द्वारा उसकी पुष्टि की जा सकती है।)

## उदाहरण

१- आचार्य चाणक्य तब तक्षशिला विश्वविद्यालय के कुलपति थे। देश के सम्पन्न व्यक्ति तथा राजा लोग उनकी आर्थिक सहायता करते थे। आवश्यकता पड़ने पर आचार्य स्वयं भी सम्पन्न व्यक्ति को सूचना देकर धन

मँगा लेते थे। एक शिष्य ने शंका की "आचार्यवर ! आप परीक्षा के रूप में लोगों से धन की याचना करते हैं ?" चाणक्य ने कहा - "नहीं वत्स ! हम राष्ट्र हित के लिये कार्य कर रहे हैं। बड़े कार्य अनेक व्यक्तियों के सहयोग से ही चलते हैं। हमारे पास जो है, वह हम लगा रहे हैं, अन्य भावनाशीलों के पास भगवान का दिया हुआ बहुत कुछ है। उन्हें प्रेरित करके श्रेष्ठ कार्य में उनके साधन लगवा देना भी पुण्य है।

२- कर्ण सत्कार्य के लिये सहयोग माँगने वाले किसी भी व्यक्ति को निराश नहीं जाने देते थे। श्रीकृष्ण उनकी इस श्रेष्ठता का विश्वास कराने के लिये दो बार कर्ण को कसौटी पर कसा।

एक बार एक ब्राह्मण को वर्षा ऋतु में यज्ञ के लिये सूखी चंदन की लकड़ी लेने भेजा। पहले युधिष्ठिर के पास भेजा। उन्होंने २-३ दिन में व्यवस्था कर देने का आश्वासन दिया, किन्तु कर्ण ने सूखी लकड़ी न मिलने पर अपने भवन के चंदन के किवाड़ फाड़ कर उसे तुरन्त दे दिये।

दूसरी बार जब कर्ण युद्धभूमि में अन्तिम श्वाँस ले रहे थे कृष्ण और अर्जुन ब्राह्मण वेष में पहुँचे और सोने की माँग की। कर्ण ने उस स्थिति में भी अपना दाँत तोड़कर उस पर मढ़ा सोना निकाल कर दे दिया।

३- राक्षसों के वध के लिये इन्द्र ने ऋषि दधीचि से उनकी हड्डियाँ माँगी। ऋषि ने सहज भाव से शरीर छोड़कर हड्डियाँ दान कर दीं। उनका मन था कि सत् कार्य में शरीर लगता है, तो शुभ ही है।

४- लंका के लिये पुल बन रहा था। एक गिलहरी भी उसके लिये अपने बालों में रेत भर-भर कर पहुँचाने लगी। बन्दर हँसे, भगवान राम के पास ले गये। "पूछा तू क्या करती है" ? गिलहरी ने उत्तर दिया " भगवान ने मुझे जितनी सामर्थ्य दी है, उसे ही सत्कार्य में लगाती हूँ" राम ने उसकी पीठ थप-थपाई और कहा मेरी दृष्टि में इसकी सहायता का महत्त्व किसी समर्थ की सहायता से कम नहीं है।

**निषेधो विहितस्तेन विस्पष्टवचनैस्तदा।**
**कोपस्य भाजनं जातो वैश्यस्तुच्छधिया प्रभोः ॥५५॥**

साधु वैश्य के मन में धन-संग्रह का लोभ पुन: आ गया और उसने अपनी नाव में लता-पत्र भरे होने का बहाना बनाकर ऋषि को सहायता देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। अपनी इस तुच्छ बुद्धि के कारण उसे पुन: भगवान के क्रोध का भाजन बनना पड़ा।

(यहाँ जमाखोरी-वृत्ति की भर्त्सना करते हुए कुछ दृष्टान्त दिये जा सकते है।

## उदाहरण

जमाखोरी का अर्थ है, वस्तुओं को उपयोग चक्र से बाहर कर लेना। इससे अनेक विकृतियाँ पनपने लगती हैं। मैं सम्पन्न व्यक्ति कहलाऊँ, इस कामना से प्रभावित मनुष्य अकारण संचय में लगकर अपना और समाज का सन्तुलन बिगाड़ देता है। ऐसे व्यक्ति को इस अनीति का दण्ड भोगना पड़ता है।

१- हिरण्याक्ष नामक राक्षस की दृष्टि धन पर ही जमी रहती थी। कहीं से भी, किसी प्रकार भी धन प्राप्त करने के प्रयास में वह लगा रहता था। तमाम सम्पत्ति उसने जमीन में गाड़कर रख ली थी। भगवान ने वाराह रूप रखकर उसका नाश करके उस सचित सम्पदा का वितरण पुन: समाज में किया। कंस - हिरण्यकश्यप द्वारा संचय तथा रावण द्वारा सोने की लंका बनाने के भी ऐसे ही परिणाम निकले।

२- शहद की मक्खी बहुत अधिक संचय करती है। फलस्वरूप उसके घर पर लोगों की निगाह लगी रहती है तथा समय पाते ही उसका घर नष्ट करके संचित शहद प्राप्त कर लेते हैं। धन संचय करने वालों द्वारा भी समाज में इस प्रकार की अपहरण की वृत्ति को बढ़ावा मिलता रहता है। वे समाज की वृत्ति भी बिगाड़ते हैं और स्वयं भी नष्ट होते हैं।

३- शरीर में बेचैनी होने लगी है। सिर में चक्कर, पेट में दर्द, मुँह में छाले, हाथ-पैरों में सुस्ती, आँखों के सामने अँधेरा छाने जैसे अनेक रोग हो गये। रोगी सबकी चिकित्सा का आग्रह करने लगा। वैद्य ने कहा रोग एक ही है, वह यह कि पेट ने अन्न संचय करना प्रारम्भ कर दिया है। जुलाब देकर पेट साफ कराते ही सारे रोग ठीक हो गये। समाज में भी जमाखोरी के कारण ऐसे ही

कष्ट पैदा हो जाते हैं।

**भूत्वा दुर्घटनाग्रस्ता नौका मग्नाह्यभूत्तदा।**
**प्रयासैर्नाविकानां च सजायो रक्षितोऽभवत् ॥५६॥**

उसकी नौका दुर्घटनाग्रस्त होकर समस्त धन सहित डूब गई। नाविकों के प्रयास से साधु वैश्य दामाद सहित किसी प्रकार बच गया।

**बुद्धिसेवापरायणां वित्तं सर्वं नदीतलात्।**
**निःसृतं स प्रयासेन मनोयोगेन वासिनाम् ॥५७॥**

नदी तट पर रहने वाले बुद्धिमान, सेवापरायण तथा परिश्रमी आश्रमवासियों के मनोयोग पूर्ण प्रयास से सारा धन नदी तल से निकाल लिया गया।

## उदाहरण

१- एक पथिक जंगल में भटक गया, रात्रि हो गयी। वर्षा से भीगकर ठिठुर रहा था। एक पेड़ के नीचे भूखा-प्यासा सिकुड़कर बैठा था। ऊपर कबूतरों ने उसे देखा। सोचा, बेचारा इस कष्ट में न जाने सबेरे तक जिन्दा रहे या न रहे? उन्होंने उसके लिये अग्नि लाकर दी तथा भोजन के लिये स्वयं अपना शरीर अर्पित कर दिया। स्वयं आग में कूद पड़ा तथा उसके कष्ट का निवारण किया।

२- बंगाल में अकाल पड़ा। विवेकानन्द जी ने अपने साथी संन्यासियों के साथ सहायता कार्य प्रारम्भ किया। धन की कमी पड़ी, तो वे बैलूर मठ बेचने को तैयार हो गये। उनका कथन था, मठ तो फिर भी बन जायेगा, किन्तु हजारों व्यक्तियों के प्राण फिर कहाँ से लाये जा सकेंगे? उनकी करुणा से सम्पन्न व्यक्ति प्रभावित हुए और धन की व्यवस्था हो गयी।

३- राजा दशरथ को पता लगा कि राक्षस ऋषियों को परेशान किये हैं, तो अपनी सेना के साथ स्वयं चलने को तैयार हो गये। विश्वामित्र जी ने राम-लक्ष्मण को माँगा, तो प्राण से प्यारे पुत्रों को भी उन्हें सौंप दिया।

४- धर्मराज को **"नरो वा कुंजरो वा"** का भ्रम पैदा करने के कारण नरक

तक ले जाया गया। उनके शरीर से स्पर्श हुई हवा से नरकवासियों को आराम मिला, यह जानकर उन्होंने यमराज से प्रार्थना की कि मुझे नर्क में रहने दें, क्योंकि इससे पीड़ितों को आराम मिलता है।

साधु वैश्य ने अपनी भूल का पश्चात्ताप किया तथा अपनी सम्पत्ति में से पर्याप्त अंश श्रेष्ठ कार्यों के लिए दान देकर अपनी निष्ठा का परिचय देता हुआ घर लौट आया।

**भूत्वा च सत्यनिष्ठौ तौ वर्धने जनसम्पदाम्।**
**पूर्णे स्वजीवने जातौ सुखसौभाग्यभागिनौ ॥५८॥**

वे वैश्य दम्पत्ति उसके बाद जीवन भर निष्ठापूर्वक सत्यव्रती बने रहकर, समाज की समृद्धि बढ़ाते रहे तथा स्वयं भी सुख, यश और पुण्य के भागी बने।

**धनं निर्वाहमात्रं च गृहीत्वा निखिलं पुनः।**
**विनियुज्य तत्प्रचारे सर्वे सुखमवाप्नुवन् ॥५९॥**

सामान्य व्यक्ति की तरह निर्वाह मात्र का धन अपने लिए खर्च करके, शेष सब सद्वृत्तियों के प्रचार-प्रसार में लगाने लगे।

**तेषां प्रयत्नैरधिका जाता धर्मप्रवृत्तयः।**
**गन्तुमसंख्याः सन्मार्गं प्रेरिता मानवास्ततः ॥६०॥**

उनके सत् प्रयासों से समाज में धर्म प्रवृत्तियाँ बढ़ीं और असंख्य व्यक्तियों ने सन्मार्ग की प्रेरणा पाकर जीवन को सार्थक बनाया।

॥इति श्रीसत्यनाराणव्रतकथायां चतुर्थोऽध्यायः समाप्त॥

# पंचमो ऽध्यायः

**अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।**
**आसीत्तुंगध्वजो राजा प्रजापालनतत्परः ॥६१ ॥**

सूतजी कहने लगे - हे मुनियो ! और आगे की कथा मैं कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो । किसी समय तुंगध्वज नाम का प्रजापालक राजा राज्य करता था ।

**नृपतिरेकदा चासौ स्वीयं राज्यं निरीक्षितुम् ।**
**श्रोतुं च सुख-दुःखानि प्रजायाः बहिरभ्रमत् ॥६२ ॥**

एक बार वह प्रजा की स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने राज्य का निरीक्षण करने निकला ।

**तत्र वटतलेऽपश्यद् वन्ये गोपगणाश्च सः ।**
**धारयितुं सत्यव्रतं धर्मानुष्ठानं कुर्वतः ॥६३ ॥**

उसने एक स्थान पर वट वृक्ष के नीचे गोप परिवारों को एकत्रित देखा, जो सत्यव्रत धारण करने वाले थे और उस समय धर्मानुष्ठान में लगे थे । यह गोपगण सामूहिक श्रमदान द्वारा उस क्षेत्र को स्वच्छ, सुन्दर तथा व्यवस्थित बनाये हुए थे ।

## उदाहरण

१- समुद्र पार करना असम्भव सा लगता था, किन्तु रीछ-बन्दरों ने सामूहिक रूप से अपनी योग्यता और श्रम का उपयोग किया, तो पुल देखते-देखते बन गया ।

२- ब्रज में बाढ़ से हर बार नुकसान होता था । लोग इन्द्र का प्रकोप मानकर पूजा-अर्चना करते थे । श्रीकृष्ण ने कहा - मेरे साथ आओ, सामूहिक श्रम से इसका हल निकलेगा । जन सहयोग से गोवर्धन पर्वत जैसा बाँध तैयार हो

गया, जिसे सामूहिक श्रम के प्रतीक के रूप में आज भी पूजा जाता है ।

३- बूँद-बूँद रस एकत्रित करके शहद बनाने का चमत्कार मधुमक्खी सामूहिक श्रमदान से ही करती है । चीटियाँ मनुष्य से भी ऊँचे अपने निवास के स्थान इसी वृत्ति से बना लेती हैं ।

४- देवताओं और राक्षसों ने मिलकर श्रम करना स्वीकार कर लिया, तो समुद्र मंथन द्वारा दुर्लभ १४ रत्न प्राप्त करने में सफल हुए । स्वयं भगवान ने भी उनकी सहायता में अपना गौरव समझा ।

**प्रज्ञाबलयुतैश्चापि विद्यासत्ताधनान्वितैः ।**
**योगदानं च वर्त्तव्यं सत्प्रतिष्ठानकर्मणि ।।६४ ।।**

समाज में जो व्यक्ति बुद्धि, बल, सत्ता, सम्पति और विद्या से सम्पन्न हों, उनका कर्तव्य है कि अवसर मिलने पर श्रेष्ठ की प्रतिष्ठा में अवश्य योगदान करें ।

**अकुर्वन्ननुरोधं ते गोपा गत्वा नृपान्तिके ।**
**गृहीतुं तत्प्रसादं च भागं नेतुं तदर्चने ।।६५ ।।**

गोपगणों ने राजा के पास जाकर उस धर्मानुष्ठान में भाग लेने तथा प्रसाद ग्रहण करने का अनुरोध किया ।

**मत्वा नीचकुलोत्पन्नान् तेषां सान्निध्यमेव च ।**
**दोषं हि जायते राजा स्पर्शमात्रादपि तदा ।।६६ ।।**

किन्तु राजा ने उन्हें नीच कुल में उत्पन्न समझकर, उनके साथ बैठने और उन्हें स्पर्श करने में भी दोष माना । यह भेद बुद्धि तथा कर्त्तव्य की उपेक्षा राजा के लिये हानिकारक सिद्ध हुई ।

## उदाहरण

१- भगवान राम असुरता के उन्मूलन के लिये अयोध्या से निकले, तो उन्होंने केवट, निषादराज गुह, कोल-भीलों तथा शबरी भीलनी आदि सबसे

समानता का व्यवहार किया। छूत-अछूत की भ्रान्ति में वे नहीं पड़े और इसीलिये सबके प्रिय बने, सबका सहयोग ले सके और सफल हुए।

२- रामानुजाचार्य रुग्ण होने पर गंगा स्नान को जाते समय किसी का भी सहारा लेकर चले जाते थे। लौटते समय किसी अछूत कहे जाने वाले के कंधे पर हाथ रखकर लौटते थे। लोगों ने कारण पूछा तो बोले "शरीरों में नहीं, भावनाओं में दोष होते हैं। लोगों को मैं यही विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि छुआ-छूत निरर्थक है, उससे अपनी पवित्रता में अन्तर नहीं पड़ता।"

३- शंकराचार्य गंगा स्नान करके आ रहे थे। मार्ग में एक अछूत बैठा था। वे नाराज हुए, बोले - "ऐ मूर्ख देखता नहीं, मैं नहाकर आ रहा हूँ, हट जा एक ओर।" वह बोला -"भगवन् किसे दूर ले जाऊं, यह शरीर अथवा आत्मा?" शंकराचार्य को अपनी भूल का बोध हुआ और उससे क्षमा माँगी।

४- संत एकनाथ स्नान करके किसी शूद्र बालक को स्नान कराते। लोगों ने पूछा तो बोले - मैं तो भगवान के चरण धोता हूँ। प्रश्नकर्ता न समझा, तो स्पष्ट किया कि शास्त्र में लिखा है कि शूद्र विराट् ब्रह्म के चरण हैं। मैं विराट् ब्रह्म का उपासक हूँ। अतः स्नान के बाद भगवान के चरण पखार कर जीवन धन्य बनाता हूँ।

**अवहेलनायाः सत्य धर्मस्य चापि भूपतेः।**
**भिन्ना परिजना जाता ये ह्यसत्कर्मकारिणः ॥६७॥**

राजा द्वारा सत्कर्त्तव्यों की अवहेलना के कारण राज परिवार और राज कर्मचारी भी उससे विमुख हो गये।

**व्यवस्था निखिला जाता सम्पदा लुप्तप्राय च।**
**समागतः विपत्तेश्च हेतुमन्विष्य ज्ञातवान्॥**
**नृपोऽपि यदहंकारकर्त्तव्य-च्युतिस्वार्थता ॥६८॥**

फलस्वरूप सारी व्यवस्थाएँ बिगड़ गयीं तथा राजा का धन-सम्मान लुप्त हो गया। इस प्रकार विपत्ति आने पर राजा ने विचार किया, तो उसे अपने अहंकारग्रस्त तथा कर्त्तव्य विमुख होने का ध्यान आया।

**विलोक्य दुर्दशां स्वीयाम् कुर्वन्दोषिणोऽपरान्।**
**भूपो विश्लेषणं स्वस्य कृतवान्स्वयमेव च ॥६९॥**

बुद्धिमान राजा ने अपनी इस दुर्दशा के लिए किसी अन्य को दोष न देकर, स्वयं आत्म-विश्लेषण किया।

## उदाहरण

१- रावण, कंस, दुर्योधन आदि यदि आत्म समीक्षा करते तो आसानी से अपनी भूलों को ठीक करके सुख-सौभाग्य पा सकते थे; किन्तु उस प्रवृत्ति के अभाव में भूल पर भूल करते गये और नष्ट हुए।

२. कालिदास निरक्षर थे। कुछ कौतुकियों ने धोखे से उनका विवाह विद्योत्तमा जैसी विदुषी से करा दिया। कालिदास को अपमानित होना पड़ा। उन्होंने आत्म समीक्षा की, विद्याध्ययन का संकल्प किया तथा पाण्डित्य का कीर्तिमान् स्थापित किया।

३. बालक वोपदेव अपने आप को मंद बुद्धि मानकर पढ़ाई से जी चुराता था। एक बार कुँए के पत्थरों पर रस्सी द्वारा पड़े निशान देखकर आत्म समीक्षा की। सोचा, मुलायम रस्सी बार-बार घिस कर पत्थर काट सकती है, तो मंद बुद्धि भी घिसाई से विद्वत्ता पा सकती है। इसी संकल्प के कारण वोपदेव शास्त्री बने।

४. राजा चम्पतराय बुन्देलखण्ड को मुगलों से मुक्त कराने के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे, किन्तु सफल न हुए। उनहोनें आत्मसमीक्षा की और अपने पुत्र छत्रसाल से कहा हमारी शैली में कोई दोष है। तुम दक्षिण जाकर शिवाजी से रणनीति सीखकर आना, तब अपना अभियान प्रारम्भ करना। इस समीक्षा के आधार पर ही छत्रसाल ने गोरिल्ला युद्ध सीखकर सफलता पायी।

**बुद्ध्याचावगतं तेन सद्धर्मोपेक्षया मम।**
**अधोऽधः पतनं जातं नान्यदत्र च कारणम् ॥७०॥**

उसकी समझ में यह तथ्य आ गया कि उसके द्वारा सत्य धर्म की उपेक्षा होने से ही यह पतन हुआ है।

**अपमानं कृतं पूर्वं तिरस्कृत्येति गोपकान्।**
**ध्यात्वा तेषां समीपे च ह्यनुतप्तो गतो नृपः ॥७१॥**

राजा को गोपगणों की याद आयी। अपने द्वारा उनकी उपेक्षा की जाने का पश्चात्ताप करके राजा उनके पास स्वयं गया। राजा ने अपनी भूल के लिये उनसे मार्गदर्शन माँगा। उनमें से एक वयोवृद्ध ने उन्हें समझाया।

गोप उवाच -

**कार्या हि सत्यव्रतिना त्यक्त्वा भेदस्य भावनाम्।**
**वृत्तिर्गृहीतुं श्रेष्ठानि तत्त्वानि प्रतिस्थानतः ॥७२॥**

गोप बोले - सत्य मार्ग अपनाने वाले को चाहिए कि वह भेद-भाव छोड़कर श्रेष्ठ तत्त्व जहाँ से भी प्राप्त हो, वहाँ से प्राप्त करे।

हम सब श्रम का सम्मान करते हैं और उसी में लगे रहते हैं। सामूहिकता और श्रम की प्रवृत्तियों के बिना समाज का सन्तुलन नहीं बन सकता।

**स्वात्मयोग्यतया स्वीय परिवाराय चाधिकम्।**
**लाभं दातुं समुत्साहः सर्वेषु भवति ध्रुवः ॥७३॥**

हममें से हर एक में अपनी योग्यता और श्रम के द्वारा अपने सारे समाज को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का उत्साह हर सदस्य में बना ही रहता है। यही प्रवृत्तियाँ अपने सहयोगियों में आप भी बढ़ायें।

यहाँ अपनी क्षमताओं और साधनों का मिल-जुलकर सहयोग करने की सामाजिक प्रवृत्ति का महत्व बताते हुए उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

## उदाहरण

१- अपनी योग्यता का श्रेय स्वयं को ही मिले, इसी प्रवृत्ति के कारण कौरव अपनी शक्तियों का युद्ध में पूरा प्रयोग न कर सके। "मुझे सेनापति बनाओ, तो चमत्कार दिखाऊं" का आग्रह अनेक श्रेष्ठ योद्धाओं में रहा। पाण्डवों ने सामूहिक प्रवृत्ति का परिचय दिया। युद्ध मर्यादा के लिये धृष्टद्युम्न को सेनापति बनाया, पर सभी योद्धा आवश्यकतानुसार आगे आकर अपनी विशेषताओं

का लाभ देते रहे और विजयी हुए ।

२- देवता अलग-अलग प्रयास करके हार गये, पर महिषासुर न मरा । तब प्रजापति के कहने से उन्होंने अपनी विशेषतायें संयुक्त करने का प्रयास किया, तो दुर्गा शक्ति प्रकट हो गयी और राक्षस का अन्त हुआ ।

**सत्यज्ञानं श्रुतं राज्ञा मननं च कृतं तदा ।**
**निर्धारितस्ततश्चैव रुचिरः जीवनक्रमः ॥७४ ॥**

राजा ने सत्य धर्म सम्बन्धी बातों को बड़े ध्यान से सुना तथा उन सिद्धान्तों का मनन करके तदनुकूल अपने जीवन क्रम का निर्धारण भी किया । श्रम-प्रतिष्ठा अभियान में लोगों की भरपूर सहायता की । राज्य में श्रमशीलता तथा सामूहिकता की वृत्तियों का विकास करने से वह पुनः धन, धान्य तथा प्रतिष्ठा का अधिकारी बन गया ।

सूत उवाच -

**य इदं कुरुते सत्यव्रतं परम दुर्लभम् ।**
**दरिद्रो लभते वित्तं बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥७५ ॥**

सूतजी बोले - हे ऋषिगणो ! जो मनुष्य इस सत्य व्रत को अपनाता है, वह दरिद्र भी भगवान की कृपा से धन-धान्य से पूर्ण हो जाता है और सब प्राणियों को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है ।

**भीतो भयाद्विमुच्येत सत्यमेव न संशयः ।**
**ईप्सितं च फलं लब्ध्वा चान्ते सत्यपुरं व्रजेत् ॥७६ ॥**

भयभीत लोगों को निर्भयता प्राप्त होती है । साधक संसार में इच्छित फल प्राप्त करके अन्त समय में सत्यलोक में स्थान पा लेता है - इसमें कोई संशय नहीं ।

॥इति श्री सत्यनाराणव्रतकथायां पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥

# आरती सत्यनाराण जी की

## आरति सत्यनारायण जी की ।

सत्यमार्ग दिखलाने वाले, धर्म- नीति सिखलाने वाले ।
भूलों को सद्ज्ञान सिखा दो, भटकों को सन्मार्ग दिखा दो ॥
हो सद्गति, निश्चित सब ही की ॥ आरति०

विद्या विनय विवेक हमें दो, ज्ञान भावना नेक हमें दो ।
तप की शक्ति सभी पहचानें, सादा जीवन को शुभ मानें ।
नियत सदा शुभ हो सब ही की ॥ आरति०

धन को बन्धन नहीं बनाना, सद् उपयोग हमें सिखलाना ॥
दुख अभाव टिकने ना पायें, सबमें वह उदारता आये ॥
सम्पति सब माने प्रभु ही की ॥ आरति०

हम सब में सत्साहस आये, दुनियाँ से अनीति मिट जाये ।
संघ बद्ध हम सब हो जायें, सबको सबके हक दिलवायें ।
नीति सिखा दो सबको नींकी ॥ आरति०

श्रम का शुभ सम्मान बढ़ायें, कर्म वीर हम सब कहलायें ।
भेद-भाव को दूर हटायें, आपस में सब प्रेम बढ़ायें ॥
होवे श्रेष्ठ प्रगति सब ही की ॥ आरति०

निज चरणों में भक्ति हमें दो, लक्ष्य प्राप्ति की शक्ति हमें दो ।
भव-बन्धन से मुक्ति हमें दो, भव तरने की युक्ति हमें दो ॥
नैया हो उस पार सभी की ॥ आरति०

# शान्ति कुंज हरिद्वार

## एक दर्शनीय, युग-तीर्थ

* भारतीय संस्कृति की जननी "गायत्री" एवं भारतीय धर्म के पिता "यज्ञ" के युग प्रवाह को जन-जन तक पहुँचाने वाला एक जागृत तीर्थ।

* उच्चस्तरीय व्यवहारिक अध्यात्म-संजीवनी विद्या एवं लोक सेवियों के प्रशिक्षणः व्यक्ति, परिवार एवं समाज निर्माण के सूत्रों पर परामर्श - मार्गदर्शन के लिए साधना एवं प्रशिक्षण सत्रों का सतत् चलने वाला, सर्व सुलभ क्रम। तप साधना से संस्कारित दिव्य वातावरण।

* अखण्ड दीप देवात्मा हिमालय का भव्य मंदिर, नियमित यज्ञ, अद्भुत बनौषधि उद्यान, २१वीं सदी के उज्ज्वल भविष्य हेतु आध्यात्मिक प्रयोग-युग संधि महापुरश्चरण आदि अनेक अद्भुत विशेषताएँ। एक बार सम्पर्क से ही जीवन में नये प्रकाश का उदय होता है।

* वशिष्ठ अरुन्धति की तरह ऋषि युग्म-परम पूज्य, युग दृष्टा पं० श्री राम शर्मा आचार्य एवं वंदनीय माता जी के तप से आलोकित।

* वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आध्यात्मिक सिद्धान्तों, नियमों के प्रतिपादन हेतु अद्वितीय ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान।

* परम सत्ता की अनुभूति कराने वाली युग के अनुरूप उपासना, व्यक्तित्व निखारने वाली जीवन साधना तथा व्यक्तिगत पुण्य तथा लोक मंगल के लिए अमोघ सेवा साधना सम्बन्धी मार्ग दर्शन प्रत्यक्ष मिलकर, साहित्य एवं पत्र व्यवहार द्वारा प्राप्त करने की समुचित व्यवस्था।

* संजीवनी विद्या के सत्र ता० १ से ६, ११ से १६, २१ से २६ प्रतिमाह लगातार चलते रहते हैं। अखण्ड ज्योति पत्रिका एवं युग निर्माण साहित्य के माध्यम से विचारों, अनुशासनों का अध्ययन करके कोई भी जिज्ञासु स्वीकृत लेकर भाग ले सकता है। जबाबी पत्र लिखकर साधना अथवा अन्य जीवनोपयोगी संदर्भ में मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

* पत्राचार का पता :-

वंदनीया माता जी, पो० शांतिकुंज, हरिद्वार, (उ० प्र०) २४६४११

540